॥ श्रीराधामानविहारिणे नमः ॥

मन्दिर-निर्माण से भगवत् प्राप्ति

प्रकाशक

श्री मान मंदिर सेवा संस्थान

गह्वरवन, बरसाना-281405 (मथुरा) उ.प्र.

रंगीली होली, फाल्गुन शुक्ल नवमी 2079 प्रथम संस्करण 1000 प्रतियाँ

http://www.maanmandir.org E-mail – info@maanmandir.org

विषयानुक्रमणिका

प्रकाशकीय निवेदन iii
श्री रमेश बाबा जी महाराज vii
1. मन्दिर किसे कहते हैं ? 1
2. मन्दिरों का भारतीय सनातन संस्कृति में महत्त्व क्या है ? 2
मंदिर निष्ठ भक्त 'श्रीकुम्भनदासजी'
3. भारतवर्ष के प्रमुख प्राचीन मंदिर कौन-कौन से हैं ? 8
4. मन्दिर बनाने की परम्परा का आरम्भ कबसे हुआ ? 10
5. मन्दिर-निर्माण कराने की विधि क्या है ? 11
6. मन्दिर बनवाने की महिमा क्या है ?.....13
7. मंदिर-निर्माण कराने में निष्ठावान कुछ विशिष्ट भक्तों की गाथाएँ 24
भक्त मामा-भानजे का चरित्र
भक्त सुन्दरदास जी का चरित्र
8. मंदिर-निर्माण में धन या शरीर से सेवा करने की क्या महिमा है ? 31
राजा धर्ममूर्ति का चरित्र
9. यवन आक्रान्ताओं ने सबसे ज्यादा मन्दिरों को ही क्यों तोड़ा ? 34
10. जब भगवान् सर्वत्र हैं तो मन्दिर बनाने की क्या आवश्यकता है ? 38
11. श्रीमानमन्दिर के जीर्णोद्धार का शुभारम्भ 39

प्रकाशकीय निवेदन

वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानी की क्रीड़ाभूमि श्रीबरसाना धाम में ब्रह्माचल पर्वत के चार शिखरों में से एक शिखर पर स्थित है 'मानगढ़' अथवा 'मानमन्दिर'। श्रीराधामाधव की प्रेमरसलीला परम विशुद्ध एवं मानवीय मन-बुद्धि के प्राकृत चिन्तन से पूर्णतया रहित दिव्यातिदिव्य है, उनका चिन्मय लीलाविहार प्राकृत स्त्री-पुरुष के विहार की तरह कामना-कलुषित नहीं है। परम रसिक संत श्रीबिहारिनदेव जी के अनुसार – **इनके मल मैथुन कछु नाहीं। दिव्य देह विहरत वन माहीं॥**

श्रीराधामाधव का शरीर दिव्य चिन्मय है और इनके विशुद्ध प्रेमविलास में प्राकृत स्त्री-पुरुष की भाँति मलिन कामक्रीड़ा का लेशमात्र भी स्पर्श नहीं है, उनके प्रेम में स्वसुखकामना की गन्ध भी नहीं है। श्रीराधारानी जो कुछ भी सोचती अथवा क्रियाकलाप करती हैं, वह अपने सुख की कामना से विहीन एकमात्र प्रियतम श्यामसुन्दर के सुख की ही अभिलाषा से करती हैं, इसी प्रकार श्यामसुन्दर भी जो कुछ मनोरथ करते अथवा क्रिया करते हैं, उसका लक्ष्य स्वसुख की कामना से पूर्णतया रहित, एकमात्र अपनी प्राणप्रिया श्रीराधिकारानी को ही सुख पहुँचाना होता है। ऐसे ही विशुद्ध प्रेमरसविलास की स्थली है – श्रीमानगढ़, जहाँ मानिनी श्रीप्रियाजी ने अपने प्रेमास्पद श्रीश्यामसुन्दर के ही सुख की आकांक्षा से मान की लीला की थी और अपनी इन मानवती प्रिया को इसी पावन स्थली पर श्रीमानबिहारीलाल ने मनाया था। श्रीराधामाधव ने आज से साढ़े पाँच हजार वर्ष पूर्व द्वापरकाल में अपने गोलोक धाम से अवतरित होकर भूलोक पर स्थित त्रैलोक्य वन्दनीया इस ब्रज-वसुन्धरा में विशुद्ध प्रेम की लोकातीत लीलायें की। 'श्रीबरसाना धाम' उनके दिव्यातिदिव्य प्रेमलीलाविहार का केन्द्रबिन्दु है। केवल साढ़े पाँच हजार वर्ष पूर्व ही नहीं अपितु वर्तमानकाल में भी प्रिया-प्रियतम की विशुद्ध प्रेममयी लीलायें यहाँ नित्य-निरन्तर होती हैं। इस तरह देखा जाए तो बरसाना धाम, यहाँ का ब्रह्माचल पर्वत तथा इस पर स्थित 'मानगढ़' पाँच हजार वर्ष पूर्व से अस्तित्व में है। पाँच हजार वर्ष से स्थापित मानिनी श्रीराधारानी के मानगढ़ का मन्दिर भी अति प्राचीन है। सन् 1953 में अपनी जन्मभूमि तीर्थराज प्रयाग से परम ब्रजनिष्ठ संत श्रीरमेशबाबामहाराजजी जब बरसाना में पधारे तो उन्होंने मानिनी के इस

मानभवन को ही अपनी आराधना और अखण्ड ब्रजवास हेतु सबसे उपयुक्त स्थान समझकर यहाँ आश्रय ग्रहण किया। उस समय मानमन्दिर चोर-डाकुओं, सर्पों और प्रेतात्माओं का भी निवास स्थान बनकर एक वीरान जीर्ण-शीर्ण खण्डहर के रूप में ब्रजवासियों द्वारा उपेक्षित और आराधनाशून्य भयावह स्थल था। जब श्रीबाबामहाराज ने यहाँ रहना आरम्भ किया तो अपने संकीर्तन-आराधना के द्वारा उन्होंने इस स्थान को पुनः अपने दिव्यातिदिव्य रूप में स्थापित कर दिया परन्तु यह मन्दिर अत्यधिक प्राचीन और जीर्ण-शीर्ण होने के कारण अपने नवीनीकरण की माँग कर रहा था। लगभग 70 वर्षों से श्रीबाबामहाराज यहाँ निवास कर रहे हैं। कई बार इस मन्दिर के जीर्णोद्धार की माँग उठी। एक बार तो भारतवर्ष के एक प्रसिद्ध उद्योगपति ने श्रीबाबा के समक्ष प्रस्तुत होकर स्वयं ही मानमन्दिर का जीर्णोद्धार कराकर नवीन मन्दिर के निर्माण का प्रस्ताव रखा था परन्तु उस उद्योगपति के गर्व भरे वचन सुनकर परम निष्किंचन संत श्रीबाबामहाराज ने उनसे कहा कि मिथ्या मान-विनाशक मानबिहारीलाल को किसी नवीन भव्य मन्दिर की आवश्यकता नहीं है, वे एक झोंपड़ी में रहें, इसी में उनकी शोभा है। श्रीबाबा के ऐसे निर्भीक वचनों से पता पड़ता है कि वे आज तक किसी धनी सेठ व भौतिक रूप से समाज में अत्यधिक प्रतिष्ठित व्यक्तियों के समक्ष कभी नतमस्तक नहीं हुए और न ही ब्रज के किसी कार्य अथवा मानमन्दिर के नवनिर्माण हेतु कभी किसी से किसी प्रकार की याचना की। इस घटना के कई वर्षों पश्चात् मुम्बई से इस्कॉन (अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्ण भावनामृत संघ) के श्रद्धालु भक्तों ने भी बिना कहे ही मानमन्दिर के जीर्णोद्धार का संकल्प किया और इसके नवनिर्माण के लिए उन्होंने स्वयं ही धन का संग्रह किया और नवीन मानमन्दिर का नक्शा व उसका नया डिजाइन तैयार करके वे लोग मानमन्दिर पर आये तथा श्रीबाबा को अपनी योजना से अवगत किया। श्रीबाबा ने उनके इस कार्य की भरपूर सराहना की परन्तु मन्दिर-निर्माण की इस योजना से वे सहमत नहीं हुए। पूज्य महाराजश्री ने कहा कि मैं चाहता हूँ कि भारतवासियों व विशेषकर ब्रज के जन-जन के हृदय में मन्दिर का निर्माण किया जाए, परन्तु इसके लिए ईंट-पत्थर का बना मन्दिर नहीं अपितु भावराज्य के अर्थात् भक्तिमय मन्दिर का निर्माण हो और इसके लिए नाम-कीर्तन के देशव्यापी एवं विस्तृत प्रचार की आवश्यकता है, अतः मेरा यही मत है कि

मन्दिर के नव निर्माण की अपेक्षा धन का सदुपयोग ब्रज व देश में भक्ति के लक्ष्य से जनजागृति अभियान के परम पुनीत कार्य में किया जाए। श्रीबाबा के इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उस समय भी मानमन्दिर के नव निर्माण के इस कार्यक्रम को स्थगित कर दिया गया। उस समय श्रीबाबामहाराज के नेतृत्त्व में सम्पूर्ण ब्रजमण्डल व ब्रज के बाहर बड़े ही जोरशोर के साथ प्रभातफेरी कार्यक्रम के माध्यम से संकीर्तन-आन्दोलन का प्रचार किया जा रहा था और मानमन्दिर के संत तथा यहाँ की साध्वियाँ श्रीबाबा के आदेश से इस आन्दोलन के चहुँमुखी विस्तार के अभियान में अत्यधिक उत्साह के साथ पूर्णरूप से समर्पित होकर जुटे थे। इसके लिए संत व साध्वियाँ तो अनेकों गाड़ियों के द्वारा प्रचार कर ही रहे थे, इसके अतिरिक्त ब्रज व भारत के कई प्रान्तों के भक्तों को भी अपने-अपने क्षेत्र में श्री भगवन्नाम-संकीर्तन के प्रचार हेतु मान मन्दिर सेवा संस्थान के द्वारा निःशुल्क वाहन प्रदान किये गये थे, यहाँ तक कि उनके डीजल और रखरखाव का प्रबन्ध भी इस संस्था द्वारा पूर्णतः निःशुल्क किया गया था। ब्रज व ब्रज के बाह्य प्रदेशों में भगवन्नाम-संकीर्तन के बहुमुखी विस्तार हेतु हजारों माइक और ढोलक भी वहाँ के भक्तजनों को निःशुल्क वितरित किये गये। श्रीबाबामहाराज के इस परमोदार कल्याणकारी आन्दोलन का यह परिणाम हुआ कि आज भारत के लगभग पैंतालीस हजार से अधिक गाँवों में 'श्रीहरिनाम-संकीर्तन-प्रभातफेरी' कार्यक्रम के माध्यम से नगर-संकीर्तन का प्रचार किया गया है। श्रीबाबा ने इस अभियान का सूत्रपात भी नगरों में नहीं वरन् भारत के गाँवों में किया क्योंकि स्वयं राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी कहा था कि हिन्दुस्तान नगरों में नहीं बल्कि गाँवों में निवास करता है। आज भी भारतवर्ष की बहुसंख्यक प्रजा गाँवों में ही निवास करती है। गाँवों में निर्धनता और शहरी सुख-सुविधाओं का अभाव होने के कारण भारत के बड़े-बड़े प्रचारक और कथावाचक प्रायः गाँवों की उपेक्षा करके नगरों में ही अपने कार्यक्रम को विस्तार देते हैं; इसके कारण ग्रामीण श्रद्धालु जनता भक्ति विषयक कल्याणकारी कार्यक्रमों से वंचित ही रह जाती है।

अतः श्रीबाबामहाराज के द्वारा उस समय 'मानमन्दिर के नवनिर्माण-कार्यक्रम' को स्थगित करना पड़ा। जब से बाबाश्री का ब्रज में आगमन हुआ तो उनके सामने ब्रज की लीलास्थलियाँ यथा ब्रज के वन, पर्वत, कुण्ड इत्यादि तेजी

से नष्ट हो रहे थे; ब्रज के पर्वतों का तो व्यापक रूप से खनन हो रहा था। इस दुर्दशा को देखकर सर्वप्रथम श्रीबाबा ने ब्रज की इन नष्ट हो रही लीलास्थलियों के संरक्षण-संवर्द्धन पर ही सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित करते हुए इन्हीं के सजाने-सँवारने व जीर्णोद्धार का व्यापक अभियान आरम्भ कर दिया। श्रीबाबा के ही अथक प्रयासों से ब्रज के अनेकों कुण्डों का जीर्णोद्धार हुआ, वनों का संरक्षण हुआ तथा पर्वतों के तीव्र गति से हो रहे खनन पर अंकुश लगा। इसके अतिरिक्त पूज्यश्री के ही प्रयास से यमुनाजी के निर्मल जल को हरियाणा प्रान्त के हथनी कुण्ड से ब्रज में लाने के लिए देश-व्यापी 'यमुना-आन्दोलन' का श्रीगणेश किया गया, जिसमें तीन बार दिल्ली तक हजारों ब्रजवासियों और देश के अन्य प्रान्तों के लोगों ने भी सहभागिता की।

इन्हीं सब व्यापक और प्रमुख कार्यक्रमों के कारण ही आरम्भ में श्रीबाबा ने मानमन्दिर के नवनिर्माण पर ध्यान नहीं दिया परन्तु अब ब्रज से जुड़े इन अभियानों में बहुमुखी सफलता प्राप्त होने तथा बरसाना में गौवंश के संरक्षण हेतु 'श्रीमाताजी गौशाला' के रूप में देश की सबसे बड़ी गौशाला की स्थापना के उपरान्त श्रीबाबा को प्रतीत हुआ कि अब मानमन्दिर का जीर्णोद्धार कर जनता-जनार्दन की सेवा हेतु नवीन मन्दिर के निर्माण का उपयुक्त समय आ गया है तो श्रीबाबामहाराज ने अब इस सर्वमंगलमय कार्यक्रम की घोषणा कर दी है। नये मानमन्दिर के निर्माण-कार्यक्रम में इस संस्था के प्रबन्धक पूर्ण उत्साह के साथ प्रयत्नशील हैं। नये मानमन्दिर का नक्शा भी तैयार किया गया है और अब सुनवीन मानमन्दिर के निर्माण का कार्य भी आरम्भ हो गया है, इस नये बन रहे 'श्रीमानमन्दिर' की प्रत्येक शिला पूर्ण निष्काम भावमयी सेवा-आराधना की ही सम्पूर्ण संसार को शिक्षा दे रही है अर्थात् निष्किञ्चना भक्ति का सूर्य है ये दिव्य-भव्य मन्दिर। समग्र हिन्दू जनमानस मन्दिर-निर्माण एवं जीर्णोद्धार कराने की महिमा से अवगत हों इसी दृष्टि से यह लघुकाय ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रबन्धक

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान, बरसाना

श्री रमेश बाबा जी महाराज

गुण-गरिमागार, करुणा-पारावार, युगललब्ध-साकार इन विभूति विशेष गुरुप्रवर पूज्य बाबाश्री के विलक्षण विभा-वैभव के वर्णन का आद्यन्त कहाँ से हो यह विचार कर मन्द मति की गति विथकित हो जाती है। कथनाशय इस पवित्र चरित्र के लेखन से निज कर व गिरा पवित्र करने का स्वसुख व जनहित का ही प्रयास है।

अध्येतागण अवगत हों इस बात से कि यह 'लेख' मात्र सांकेतिक परिचय ही दे पाएगा अशेष श्रद्धास्पद (बाबाश्री) के विषय में। सर्वगुणसमन्वित इन दिव्य-विभूति का प्रकर्ष-आर्ष जीवन-चरित्र कहीं लेखन-कथन का विषय है?

मलिन अन्तस् में सिद्ध सन्तों के वास्तविक वृत्त को यथार्थ रूप से समझने की क्षमता ही कहाँ, फिर लेखन की बात तो अतीव दूर है तथापि इन लोक-लोकान्तरोत्तर विभूति के चरितामृत की श्रवणाभिलाषा ने असंख्यों के मन को निकेतन कर लिया, अतएव सार्वभौम महत् वृत्त को शब्दबद्ध करने की धृष्टता की।

तीर्थराज प्रयाग को जिन्होंने जन्मभूमि बनने का सौभाग्य-दान दिया। माता-पिता के एकमात्र पुत्र होने से उनके विशेष वात्सल्यभाजन रहे। ईश्वरीय-योजना ही मूल हेतु रही आपके अवतरण में। दीर्घकाल तक अवतरित दिव्य दम्पति स्वनामधन्य श्री बलदेव प्रसाद शुक्ल ('शुक्ल भगवान्' जिन्हें लोग कहते थे) एवं श्रीमती हेमेश्वरी देवी को सन्तान-सुख अप्राप्य रहा, सन्तान-प्राप्ति की इच्छा से कोलकाता के समीप तारकेश्वर में जाकर आर्त पुकार की, परिणामतः सन् 1930 पौष मास की सप्तमी को रात्रि 9:27 बजे कन्यारत्न श्री तारकेश्वरी (दीदी जी) का अवतरण हुआ, अनन्तर दम्पत्ति को पुत्र-कामना ने व्यथित किया । पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से कठिन यात्रा कर रामेश्वर पहुँचे, वहाँ जलान्न त्याग कर शिवाराधन में तल्लीन हो गये, पुत्र कामेष्टि महायज्ञ किया। आशुतोष हैं रामेश्वर प्रभु, उस तीव्राराधन से प्रसन्न हो तृतीय रात्रि को माता जी को सर्वजगन्निवासावास होने का वर दिया। शिवाराधन से सन् 1938 पौष मास कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि को अभिजित मुहूर्त मध्याह्न 12 बजे अद्भुत बालक का ललाट देखते ही पिता (विश्व के प्रख्यात व प्रकाण्ड ज्योतिषाचार्य) ने कह दिया – "यह बालक गृहस्थ ग्रहण न

कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहेगा, इसका प्रादुर्भाव जीव-जगत के निस्तार निमित्त ही हुआ है।" वही हुआ, गुरु-शिष्य परिपाटी का निर्वाहन करते हुए शिक्षाध्ययन को तो गये किन्तु बहु अल्पकाल में अध्ययन समापन भी हो गया।

गुरुजनों को गुरु बनने का श्रेय ही देना था अपने अध्ययन से। सर्वक्षेत्र-कुशल इस प्रतिभा ने अपने गायन-वादन आदि ललित कलाओं से विस्मयान्वित कर दिया बड़े-बड़े संगीत-मार्तण्डों को। प्रयागराज को भी स्वल्पकाल ही यह सानिध्य सुलभ हो सका "तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि" ऐसे अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न असामान्य पुरुष का।

अवतरणोद्देश्य की पूर्ति हेतु दो बार भागे जन्मभूमि छोड़कर ब्रजदेश की ओर किन्तु माँ की पकड़ अधिक मजबूत होने से सफल न हो सके। अब यह तृतीय प्रयास था, इन्द्रियातीत स्तर पर एक ऐसी प्रक्रिया सक्रिय हुई कि तृणतोड़नवत् एक झटके में सर्वत्याग कर पुनः गति अविराम हो गई ब्रज की ओर।

चित्रकूट के निर्जन अरण्यों में प्राण-परवाह का परित्याग कर परिभ्रमण किया; सूर्यवंशमणि प्रभु श्रीराम का यह वनवास-स्थल 'पूज्यपाद' का भी वनवास-स्थान रहा। "स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे" इस भावना से निर्भीक घूमे उन हिंसक जीवों के आतंक संभावित भयानक वनों में।

आराध्य के दर्शन को तृषान्वित नयन, उपास्य को पाने के लिए लालसान्वित हृदय अब बार-बार 'पाद-पद्मों' को श्रीधाम बरसाने के लिए ढकेलने लगा, बस पहुँच गए बरसाना। मार्ग में अन्तस् को झकझोर देने वाली अनेकानेक विलक्षण स्थितियों का सामना किया। मार्ग का असाधारण घटना संघटित वृत्त यद्यपि अत्यधिक रोचक, प्रेरक व पुष्कल है तथापि इस दिव्य जीवन की चर्चा स्वतन्त्र रूप से भिन्न ग्रन्थ के निर्माण में ही सम्भव है, अतः यहाँ तो संक्षिप्त चर्चा ही है। बरसाने में आकर तन-मन-नयन आध्यात्मिक मार्गदर्शक के अन्वेषण में तत्पर हो गए। श्रीजी ने सहयोग किया एवं निरन्तर राधारससुधा सिन्धु में अवस्थित, राधा के परिधान में सुरक्षित, गौरवर्णा की शुभ्रोज्ज्वल कान्ति से आलोकित-अलङ्कृत युगल सौख्य में आलोडित, नाना पुराणनिगमागम के ज्ञाता, महावाणी जैसे निगूढ़ात्मक ग्रन्थ के प्राकट्यकर्ता "अनन्त श्री सम्पन्न श्री श्री प्रियाशरण जी महाराज" से शिष्यत्व स्वीकार किया।

ब्रज में भामिनी का जन्म स्थान 'बरसाना', बरसाने में भामिनी की निज कर निर्मित 'गह्वर-वाटिका' "बीस कोस वृन्दाविपिन पुर वृषभानु उदार, तामें गहवर वाटिका जामें नित्य विहार" और उस गह्वरवन में भी महासदाशया मानिनी का मनभावन मान-स्थान 'श्रीमानमन्दिर' ही मानद (बाबाश्री) को मनोनुकूल लगा। 'मानगढ़' ब्रह्माचलपर्वत की चार शिखरों में से एक महान शिखर है। उस समय तो यह 'बीहड़ स्थान' दिन में भी अपनी विकरालता के कारण किसी को मन्दिर-प्राङ्गण में न आने देता। मन्दिर का आन्तरिक मूल-स्थान चोरों को चोरी का माल छिपाने के लिए था। चौराग्रगण्य की उपासना में इन विभूति को भला चोरों से क्या भय? भय को भगाकर भावना की – "तस्कराणां पतये नमः" – चोरों के सरदार को प्रणाम है, पाप-पङ्क के चोर को भी एवं रकम-बैंक के चोर को भी। 'ब्रजवासी चोर भी पूज्य हैं हमारे' इस भावना से भावित हो द्रोहार्हणों (द्रोह के योग्य) को भी कभी द्रोह-दृष्टि से न देखा, अद्वेष्टा के जीवन्त स्वरूप जो ठहरे। फिर तो शनैः-शनैः विभूति की विद्यमत्ता ने स्थल को जाग्रत कर दिया, अध्यात्म की दिव्य सुवास से परिव्याप्त कर दिया। जग-हित-निरत इस दिव्य जीवन ने असंख्यों को आत्मोन्नति के पथ पर आरूढ़ कर दिया एवं कर रहे हैं। श्रीमच्चैतन्यदेव के पश्चात् कलिमलदलनार्थ नामामृत की नदियाँ बहाने वाली एकमात्र विभूति के सतत् प्रयास से आज 40 हजार से अधिक गाँवों में प्रभातफेरी के माध्यम से नाम निनादित हो रहा है। ब्रज के कृष्णलीला सम्बन्धित दिव्य वन, सरोवर, पर्वतों को सुरक्षित करने के साथ-साथ सहस्रों वृक्ष लगाकर सुसज्जित भी किया। अधिक पुरानी बात नहीं है, आपको स्मरण करा दें - सन् 2009 में "श्रीराधारानी ब्रजयात्रा" के दौरान ब्रजयात्रियों को साथ लेकर स्वयं ही बैठ गये आमरण अनशन पर इस संकल्प के साथ कि जब तक ब्रज-पर्वतों पर हो रहे खनन द्वारा आघात को सरकार रोक नहीं देगी, मुख में जल भी नहीं जायेगा। समस्त ब्रजयात्री भी निष्ठापूर्वक अनशन लिए हुए हरिनाम-संकीर्तन करने लगे और उस समय जो उद्दाम गति से नृत्य-गान हुआ; नाम के प्रति इस अटूट आस्था का ही परिणाम था कि 12 घंटे बाद ही विजयपत्र आ गया। दिव्य विभूति के अपूर्व तेज से साम्राज्य-सत्ता भी नत हो गयी। गौवंश के रक्षार्थ गत 15 वर्ष पूर्व माताजी गौशाला का बीजारोपण किया था, देखते ही देखते आज उस वट बीज ने विशाल तरु का रूप ले लिया, जिसके

आतपत्र (छाया) में आज 65,000 से अधिक गायों का मातृवत् पालन हो रहा है। संग्रह-परिग्रह से सर्वथा परे रहने वाले इन महापुरुष की 'भगवन्नाम' ही एकमात्र सरस सम्पत्ति है। परम विरक्त होते हुए भी बड़े-बड़े कार्य सम्पादित किये इन ब्रज-संस्कृति के एकमात्र संरक्षक, प्रवर्द्धक व उद्धारक ने। गत सप्तति (70) वर्षों से ब्रज में क्षेत्रसन्यास (ब्रज के बाहर न जाने का प्रण) लिया एवं इस सुदृढ़ भावना से विराज रहे हैं। ब्रज, ब्रजेश व ब्रजवासी ही आपका सर्वस्व हैं। असंख्य जन आपके सान्निध्य-सौभाग्य से सुरभित हुये, आपके विषय में जिनके विशेष अनुभव हैं, विलक्षण अनुभूतियाँ हैं, विविध विचार हैं, विपुल भाव-साम्राज्य है, विशद अनुशीलन हैं; इस लोकोत्तर व्यक्तित्व ने विमुग्ध कर दिया है विवेकियों का हृदय। वस्तुतः कृष्णकृपालब्ध पुमान् को ही गम्य हो सकता है यह व्यक्तित्व। रसोदधि के जिस अतल-तल में आपका सहज प्रवेश है, यह अतिशयोक्ति नहीं कि रस-ज्ञाताओं का हृदय भी उस तल से अस्पृष्ट ही रह गया। 'आपकी आन्तरिक स्थिति क्या है' यह बाहर की सहजता, सरलता को देखते हुए सर्वथा अगम्य है। आपका अन्तरंग लीलानन्द, सुगुप्त भावोत्थान, युगल-मिलन का सौख्य इन गहन भाव-दशाओं का अनुमान आपके सृजित साहित्य के पठन से ही सम्भवहै। आपकी अनुपम कृतियाँ– श्री रसिया रसेश्वरी, स्वर वंशी के शब्द नूपुर के, ब्रजभावमालिका, भक्तद्वय चरित्र इत्यादि हृदयद्रावी भावों से भावित विलक्षण रचनाएँ हैं। आपका त्रैकालिक सत्संग अनवरत चलता ही रहता है। साधक-साधु-सिद्ध सबके लिए सम्बल हैं आपके त्रैकालिक रसार्द्रवचन। दैन्य की सुरभि से सुवासित अद्भुत असमोर्ध्व रस का प्रोज्ज्वल पुञ्ज है यह दिव्य रहनी, जो अनेकानेक पावन आध्यात्मास्वाद के लोभी मधुपों का आकर्षण केन्द्र बन गयी, सैकड़ों ने छोड़ दिए घर-द्वार और अद्यावधि शरणागत हैं; ऐसा महिमान्वित-सौरभान्वित वृत्त विस्मयान्वित कर देने वाला स्वाभाविक है। रस-सिद्ध-सन्तों की परम्परा इस ब्रजभूमि पर कभी विच्छिन्न नहीं हो पाई। श्रीजी की यह 'गह्वर-वाटिका' जो कभी पुष्पविहीन नहीं होती, शीत हो या ग्रीष्म, पतझड़ हो या पावस, एक न एक पुष्प तो आराध्य के आराधन हेतु प्रस्फुटित ही रहता है। आज भी इस अजरामर, सुन्दरतम, शुचितम, महत्तम, पुष्प (बाबाश्री) का जग 'स्वस्तिवाचन' कर रहा है। आपके अपरिसीम उपकारों के लिए हमारा अनवरत वन्दन अनुक्षण प्रणति भी न्यून है।

1. मन्दिर किसे कहते हैं ?

मन्दिर शब्द की सामान्य परिभाषा है –

"मन्दन्ते मोदन्ते लोका यत्र मन्दिरम्"

"मन्द्यते सुप्यतेऽत्र मन्द्यते स्तूयते इति वा मन्दिरम्"

'जहाँ जाने से लोग प्रसन्न हो जाएँ, सो जाएँ या शान्तचित्त होकर स्थिर हो जाएँ, उसे मन्दिर कहते हैं।'

अर्थात् मन्दिर वह पवित्र स्थान है जहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति के मन को शान्ति मिलती है, प्रसन्नता का अनुभव होता है एवं जहाँ प्रवेश मात्र से ही सकारात्मक ऊर्जा (positive energy) महसूस होती है।

भारतीय सनातन धर्म में उपासना-स्थल (आराधना-स्थल) को मन्दिर कहते हैं। वह भवन जिसमें पूजा या उपासना (आराधना) की दृष्टि से देव-मूर्ति की स्थापना की गई हो, अर्थात् पूजा-अर्चना के लिए देवप्रतिमा स्थापित कर निश्चित की हुई जगह या देवस्थान मन्दिर कहलाता है।

मन्दिर का शाब्दिक अर्थ 'घर' है। देवताओं का निवास स्थान होने के कारण इसे देवालय भी कहते हैं। शास्त्रों में मन्दिर को अन्य नामों से भी पुकारा गया है जैसे – प्रासाद, देवायतन, देवगृह, देवस्थान आदि।

हिन्दू मन्दिर में अन्दर एक गर्भगृह होता है जिसमें मुख्य देवता की मूर्ति स्थापित होती है; गर्भगृह के ऊपर की संरचना को 'शिखर या विमान' कहते हैं, जिस पर कलश व ध्वज लगाए जाते हैं। मन्दिर के गर्भगृह के चारों ओर परिक्रमा के लिये स्थान होता है। इसके अलावा मन्दिर में धार्मिक सभाओं के लिए कक्ष हो सकता है। ऐसे ही एक मुख्य मंडप के अतिरिक्त लघु व अर्द्धमण्डप भी हो सकते हैं, जो दर्शन के अतिरिक्त भजन, कीर्तन, नर्तन आदि के लिए भी प्रयुक्त होते रहे हैं। सामान्यतः प्रथम मंडप 'सभामंडप' दर्शन हेतु व द्वितीय मंडप 'रंगमंडप' भजन, कीर्तन, नर्तन हेतु के रूप में प्रयुक्त होता रहा है।

वास्तु-शास्त्र एवं प्राचीन धर्मशास्त्रों में निर्धारित नियमों के अनुसार मन्दिरों का निर्माण किया जाता है। मन्दिर निर्माण में मुख्यत: पत्थर का प्रयोग

होता रहा है, किंतु ईंटों के भी प्रचुर प्रयोग मिल जाते हैं। अनेक मन्दिरों के निर्माण में राजाओं की प्रमुख भूमिका रही है, विशेषत: अधिकांश विशाल व भव्य मन्दिरों का निर्माण राजवंशों द्वारा ही किया गया है।

'मन्दिर' का निर्माण ध्यान-साधना से अधिक दर्शन-पूजन के लिए किया गया था इसीलिये मन्दिरों में दर्शन के लिए समयावधि भी निर्धारित है कि कितने बजे मन्दिर खुलेगा या कब बंद रहेगा। चूँकि देवता को नराकृति रूप में ईश्वरीय विग्रह माना जाता है, अत: उनके भोजन, शयन, जागरण आदि की भी व्यवस्था की जाती है।

2. मन्दिरों का भारतीय सनातन संस्कृति में महत्त्व क्या है ?

'भारत' एक ऐसा देश है जो अपने गौरवशाली इतिहास, समृद्ध विरासत, सांस्कृतिक विविधता और अनूठी परम्पराओं के साथ-साथ अपने मन्दिरों और धार्मिक स्थलों के लिए ही जाना जाता है।

हिन्दू धर्म में 'मन्दिर' बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं क्योंकि ये देवी-देवताओं के निवास स्थान माने जाते हैं और जहाँ जाकर हिन्दू धर्मावलम्बी देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना करके उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं। आज भी लाखों लोग मन्दिरों में नित्य दर्शन, पूजा-प्रार्थना के लिए जाते हैं। मन्दिर भगवान् से जुड़ने के भक्ति करने के सबसे अच्छे माध्यम हैं।

मन्दिर भारतीय धर्म व संस्कृति में धर्म के लौकिकीकरण व उपासना पद्धति के सरलीकरण के प्रमुख सूत्रधार भी माने जाते हैं, क्योंकि इन्होंने न केवल यज्ञ की क्रमशः जटिल होती परंपरा के समक्ष एक सरल विकल्प प्रस्तुत किया, अपितु जनसामान्य के धर्म तक पहुँचने व धर्म का सार्वजनीकरण करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मन्दिरों का भारतीय सनातन संस्कृति के संरक्षण में अभूतपूर्व योगदान रहा है। मन्दिरों के कारण ही जनमानस के मन में ईश्वरीय सत्ता के प्रति सुदृढ़ विश्वास बना रहा, मन्दिरों में जाने से ही लोगों में धर्मपरायणता की भावना पैदा होती रही है व जीवन में सात्त्विकता का संचार होता रहा है।

मन्दिर में विराजित भगवद्विग्रह के दर्शन से आगन्तुक दर्शनार्थियों को तनाव से मुक्ति एवं उनके मन को शान्ति मिलती है और वे भक्तिरस में निमग्न होते हैं। अच्छे मनोभाव से जाने वाले की सभी तरह की समस्याएँ प्रतिदिन मन्दिर जाने से समाप्त हो जाती है। मन्दिर जाते रहने से मन में दृढ़ विश्वास और उम्मीद की ऊर्जा का संचार होता है। यदि आपने कोई ऐसा अपराध किया है कि जिसे आप ही जानते हैं तो आप मन्दिर में भगवद्विग्रह के समक्ष प्रायश्चित्त पूर्वक क्षमा-प्रार्थना करके अपने मन को हल्का कर सकते हैं। मन्दिर में शंख और घंटियों की आवाजें वातावरण को शुद्ध कर मन और मस्तिष्क को शांत करती हैं। धूप और दीप से मन और मस्तिष्क के सभी तरह के नकारात्मक भाव हट जाते हैं और सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है।

मन्दिरों में संतों द्वारा होने वाले कथा-प्रवचनों के माध्यम से हमें कुमार्ग से हटकर सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है एवं दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होती है। मठ-मन्दिरों में ही धार्मिक संगठनों का निर्माण करके उनके द्वारा शास्त्रीय सदाचार और अनुशासन के सर्वकालिक मान्य सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया जाता रहा है। मन्दिर हमारे नैतिक विचारों के विकास में एक अनिवार्य हिस्सा हैं। हमारे व्यवहारिक और आध्यात्मिक जीवन में मन्दिरों के महत्व को नजरअंदाज करना अज्ञानता है।

मन्दिर में भक्तिमय संगीत, नृत्य और ललित कला कार्यक्रमों के माध्यम से कलाकारों को प्रोत्साहन दिया जाता है। अन्य देशों में निर्मित मन्दिर हिन्दू धर्म की संस्कृति को आगे ले जाने के रूप में कार्य करते हैं और हिंदू धर्म के बारे में जानने में रुचि रखने वाले भारतीय समुदाय और स्थानीय जनता के लिए आध्यात्मिक और शैक्षिक सेवाओं का प्रसार करते हैं। मन्दिरों का महत्व धार्मिक-आध्यात्मिक प्रतिष्ठानों के अतिरिक्त सांस्कृतिक विरासतों व पुरातात्विक धरोहरों के रूप में भी रहा है। अपनी दिव्यता एवं भव्यता के कारण यह तीर्थयात्रियों एवं पर्यटकों के आकर्षण के प्रमुख केंद्र रहे हैं और ऐसे अनेक मन्दिर है जहाँ प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में श्रद्धालु आते हैं और दर्शन कर स्वयं को अभिभूत पाते हैं (परम संतुष्ट होकर आनन्द का अनुभव करते हैं)।

(मन्दिर-निष्ठ भक्त 'श्रीकुम्भनदासजी')

'मन्दिरों की महत्ता' का बोध कराने वाला एक बड़ा ही सुन्दर प्रसंग है–एक बार अष्टछाप के महाकवि भक्तप्रवर श्रीकुम्भनदासजी पारासौली में अपने खेत पर थे, श्रीठाकुरजी (श्रीनाथजी) इनके सम्मुख ही विविध क्रीड़ा कर रहे थे, इतने में मन्दिर में 'श्रीनाथजी' के उत्थापन का समय हो गया, तब श्रीकुम्भनदासजी खेत से उठकर श्रीगिरिराज गोवर्धन पर स्थित श्रीनाथ जी के मन्दिर को चलने के लिए प्रस्तुत हुए। श्रीठाकुरजी ने पूछा–"भक्तजी, तुम कहाँ पर जा रहे हो ?" श्रीकुम्भनदासजी ने कहा–"उत्थापन का दर्शन करने के लिए।" श्रीठाकुरजी ने पूछा कि मैं तो तुम्हारे निकट ही हूँ, फिर वहाँ पर किसका दर्शन करने के लिए जा रहे हो ? श्रीकुम्भनदासजी ने कहा–"जै जै यह तो आपकी महान् कृपा है कि आप यहाँ पर ही मुझको दर्शन सुख दे रहे हैं, किन्तु आपका कोई विश्वास नहीं कि तत्क्षण ही आप यहाँ से चले जायँ तो इसमें हमारा क्या वश है ?" किन्तु आप मन्दिर में तो श्रीआचार्य महाप्रभुजी के द्वारा विराजमान हुए हैं, अतः: आप वहाँ से तो क्षण भर के लिए भी कहीं जा नहीं सकते हैं, अतः मन्दिर में जाने से तो मुझको स्थायी रूप से ही दर्शन मिलेंगे, यहाँ पर तो दर्शन आपकी स्वेच्छा के आधार पर ही हैं और मन्दिर में तो आपके दर्शन श्रीआचार्य कृपाश्रित हैं, मुझको तो आपसे अधिक श्रीआचार्य कृपा पर ही भरोसा है, श्रीआचार्य कृपा करें तो इसमें आपकी मनमानी नहीं चल सकती है कि आप दर्शन न दें; अर्थात् आपसे अधिक मुझे आपके अर्चाविग्रह पर भरोसा ज्यादा है।

इसका द्वितीय कारण यह भी है कि मेरे द्वारा आपके प्रतिदिन मन्दिर में दर्शन करते रहने के पुण्य-प्रताप से एवं आपकी अनन्य कृपा के द्वारा ही आज मुझ दीन को खेत पर ही क्रीड़ा-विनोद करते हुए दर्शन दे रहे हैं।

तीसरा अभिप्राय मेरा मन्दिर में आपके दर्शन करने का यह भी है कि वहाँ पर समस्त वैष्णवों, श्रीगुरुजनों के दर्शन, संभाषण का लाभ भी प्राप्त हो जाता है, अतः मैं तो मन्दिर में जाकर अवश्य ही आपके उत्थापन का दर्शन करूँगा।

ऐसे 'श्रीभक्तमाल' जी में अनेकों सिद्ध भक्तों के चरित्र मिलते हैं जिनका नित्य मन्दिर जाने का नियम था; जैसे –

('श्रीभक्तमाल' छप्पय 115) महान कृष्णभक्ता श्रीमीराबाई जी नित्य मन्दिर जाकर वहाँ नृत्य-गान करती थीं, उन्होंने तो स्वयं चित्तौड़ में एक मन्दिर भी बनवाया था तो आज भी दर्शनीय है। वे स्वयं कहती हैं –

'नित उठ हरि जू के मन्दिर जास्यां', 'हरि मन्दिर में निरत करास्यां'

('श्रीभक्तमाल' छप्पय 52) श्रीमीराबाई जी के चचेरे भाई श्रीजयमल जी स्वयं मेड़ता में स्थित चारभुजा नाथ जी के मन्दिर में प्रतिदिन 10 घड़ी (लगभग 4 घण्टे) पूजा-अर्चना करते थे।

('श्रीभक्तमाल' छप्पय 117) ओरछानरेश श्रीराधा-कृष्ण के अनन्य भक्त श्रीमधुकरशाह जी का भी प्रतिदिन ओरछा स्थित जुगलकिशोर जी के मन्दिर में जाकर भगवान् के समक्ष नृत्य करने का नियम था।

('श्रीभक्तमाल' छप्पय 104) इन्हीं मधुकरशाह जी की धर्मपत्नी रामभक्ता रानी गणेश कुँवरि जी स्वयं अयोध्या से श्रीरामराजा सरकार के विग्रह को लाई थीं और उन्होंने बड़ा सुन्दर ओरछा में रामराजा सरकार का मन्दिर बनवाया था, जहाँ आज भी श्रीरामराजा सरकार विराजमान हैं।

('श्रीभक्तमाल' छप्पय 49) केरल के राजा अनन्य रामभक्त श्रीकुलशेखर जी का भी प्रतिदिन मन्दिर जाकर राजोपचार से भगवान् की पूजा-अर्चना करने का नियम था।

('श्रीभक्तमाल' छप्पय 43) वारकरी भक्त श्रीनामदेव का भी प्रतिदिन श्रीविठोबा मन्दिर (पंडरीनाथ जी के मन्दिर) में जाने का नियम था।

('श्रीभक्तमाल' छप्पय 59) भक्त श्रीरैदास जी ने भी भगवान् के लिये एक बड़ा सुन्दर मन्दिर बनवाया था–**'संतन बसाय हरि मन्दिर चिनवायौ है।'**

('श्रीभक्तमाल' छप्पय 142) आमेर नरेश राजा मानसिंह के भाई माधौसिंह की धर्मपत्नी महान भक्ता श्रीरानी रत्नावती जी ने भी मन्दिर बनवाकर उसमें श्रीकृष्ण का विग्रह पधराकर उनकी सेवा, कीर्तन-भजन में अपना चित्त जोड़ा था।

ऐसे न जाने कितने अनगिनत महान भगवद्-भक्तों के उदाहरण मिलते हैं कि इनकी भक्ति का विकास मन्दिरों के ही आस-पास हुआ। इसलिए मन्दिरों के महत्त्व को हल्के में नहीं लिया जा सकता है।

स्कन्दपुराण में तो यहाँ तक लिखा है – 'जिस देश में तुलसी जी नहीं हैं अथवा भगवान् विष्णु का मन्दिर नहीं है, ऐसा स्थान निवास करने योग्य नहीं है।' मन्दिरों की प्रधानता के कारण ही भारत को 'देवभूमि' कहा जाता है।

आदर्श मन्दिर की पहिचान

भारतवर्ष को 'रत्नगर्भाभूमि' कहते हैं, जहाँ अनेकों रत्न (ऋषि-मुनि-संत-भक्तजन) अवतरित होकर 'आराधना' द्वारा चराचर सृष्टि को पवित्र करते हैं ('श्रीभगवान्' को प्रसन्न करने के लिए की गई 'निष्काम आराधना' में अनन्त शक्ति है, जिसका प्रभाव सभी क्षेत्रों 'विभागों' में पड़ता है।), इसी आराधना (श्रीभगवान् के गुणगानमयी रसरूपा भक्ति) का प्रचार-प्रसार करने के लिए ही समय-समय पर स्वयं श्रीभगवान् (राम-कृष्ण) भी इसी धराधाम में अवतार लेते हैं । इसलिए इस देश को 'आराधना-भूमि' भी कहते हैं, जहाँ आराधकजन मंदिरों (कुटिया, आश्रम, मठ) में आराधना करते हैं। 'आराधना' होने के कारण वह स्थल इतना परम पावन हो जाता है कि उसे 'मन्दिर' के नाम से पुकारते हैं, जिसके दर्शन-स्पर्श व स्मरण से ही लोगों का कल्याण हो जाता है। कथनाशय है कि श्रीभगवत्प्राप्ति के लक्ष्य से आराधना (कथा-कीर्तन) करने वाले संतजनों से ही 'मन्दिर' सुशोभित होकर 'परम तीर्थ' बन जाता है – **साँचे मन्दिर हरि के संत।** श्रीसूरदास जी भी कहते हैं –

हरि-हरि-हरि सुमिरन करो। हरि चरणारविन्द उर धरो॥
हरि की कथा होय जब जहाँ। गंगा हू चलि आवै तहाँ॥
गंगा, सिन्धु, सरस्वति आवै। गोदावरी विलम्ब न लावै॥
सर्वतीर्थ को वासा तहाँ। सूर हरिकथा होवै जहाँ॥

स्वयं श्रीभगवान् ने नारदजी से कहा है कि मैं न तो वैकुण्ठ धाम में रहता हूँ, न ही योगियों के हृदय में रहता हूँ; मेरे भक्तजन जहाँ गुणगान (सत्संग-संकीर्तन) करते हैं, मैं वहीं रहता हूँ –

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदयेन च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

(पद्म पुराण)

जिन मंदिरों में निष्काम भाव से निरन्तर संकीर्तन व सत्संग होता है, वहाँ विराजित श्रीभगवान् के अर्चाविग्रह जाग्रत व चमत्कारी हो जाते हैं एवं विशुद्ध भक्ति की सुगन्ध सर्वत्र प्रसरित होकर सहज ही भगवत्-सेवा-कार्यों में सभी प्रकार की सफलताएँ मिलने लगती हैं। श्रीवल्लभाचार्यजीमहाराज के समय में गोवर्द्धन स्थित श्रीनाथजी के मन्दिर में आठों पहर आराधना होती थी, जिसमें उनके शिष्यगण सूरदासजी, कुम्भनदासजी, कृष्णदासजी, परमानन्ददासजी इत्यादि पदगान द्वारा श्रीनाथजी को रिझाते थे; श्रीनाथजी स्वयं बात करते थे, अनेकों लीलाओं का अनुभव कराते थे; वहाँ के भक्तिमय वातावरण की चर्चा बहुत-बहुत दूर तक फैलती थी, जिसे सुनकर लोग श्रीनाथजी के दर्शन करने आते थे। उस समय दिल्ली का बादशाह अकबर भी श्रीनाथजी की महिमा-यश-कीर्ति को सुनकर दर्शन के लिए गोवर्द्धन में आकर नाथजी के मन्दिर में नित्य हो रहे सरस पदगान को सुनकर भाव विभोर हो जाता था।

वर्तमान समय में 'हिन्दू सनातन संस्कृति के आदर्श मन्दिर' की पहिचान का सर्वोच्च उदाहरण बरसाने के गह्वरवनधाम में स्थित 'श्रीमानमन्दिर' है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण संसार को विशुद्ध भक्ति (निष्काम आराधना व ब्रजसेवा) की सीख मिल रही है; यहाँ के परम निष्किञ्चनावृत्तिमयी भक्ति के वैभव (65 हजार से अधिक गौवंश, श्रीब्रज-संरक्षण की सेवायें, 15 हजार से अधिक यात्रियों की प्रतिवर्ष चलने वाली 'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा', नित्य लगभग 1000 भक्तों की निःशुल्क भोजन-प्रसाद-सेवा, नित्य प्रातःकालीन सत्संग, लगभग 150 आराधिकाओं द्वारा नित्य संध्याकालीन आराधना, पूर्णतः निष्काम भाव से कथा-कीर्तन का प्रचार-प्रसार) को देखकर घोर नास्तिक व्यक्ति में भी निष्काम भक्ति का संचार होने लगता है।

जिन मंदिरों में सत्संग-संकीर्तन का अभाव हुआ तो वहाँ के लोगों में राजसी-तामसी भाव (काम, लोभ इत्यादि विकार) आ जाने से वे विषय-भोगी

बनकर धन-संग्रह में लग गए; मन्दिर के पुजारी देव-मूर्ति के माध्यम से रुपया-पैसा एकत्रित करने लगे, जिससे श्रीठाकुरजी की सेवा-पूजा व्यापार का साधन बन गई; प्रायः इन्हीं कारणों से उन मंदिरों का विनाश होता देखा गया है –

माया महा ठगिनी हम जानी।
मन्दिर में मूरत ह्वै बैठी, तीरथ में भई पानी॥
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू के कौड़ी कानी।
कहत 'कबीर' सुनों भाई साधो, ये सब अकथ कहानी॥

3. भारतवर्ष के प्रमुख प्राचीन मन्दिर कौन-कौन से हैं ?

प्रमुख विष्णु-मन्दिर

बद्रीनाथ मन्दिर, उत्तराखण्ड
श्रीरंगनाथ स्वामी मन्दिर, श्रीरंगम तमिलनाडु
वरदराज पेरुमल मन्दिर, कांचीपुरम तमिलनाडु
तिरुपति वेंकटेश्वर मन्दिर (तिरुपति बालाजी), चित्तूर आंध्रप्रदेश
श्रीवराहलक्ष्मी नरसिंह मन्दिर (सिंहाचलम मन्दिर), विशाखापट्टनम आंध्रप्रदेश
पद्मनाभ स्वामी मन्दिर, तिरुअनन्तपुरम केरल

प्रमुख राम-मन्दिर

रामजन्मभूमि मन्दिर, अयोध्या उत्तरप्रदेश
कनक भवन, अयोध्या उत्तरप्रदेश
रामराजा सरकार मन्दिर, ओरछा मध्यप्रदेश
रामास्वामी मन्दिर, कुंभकोणम तमिलनाडु
त्रिप्रयार श्रीरामा मन्दिर, केरल
श्रीसीता रामचन्द्रस्वामी मन्दिर, भद्राचलम तेलंगाना

प्रमुख कृष्ण-मन्दिर

द्वारिकाधीश मन्दिर, द्वारिका गुजरात
रणछोड़राय मन्दिर, डाकोर गुजरात

जगन्नाथ मन्दिर, पुरी ओडिशा
विठोबा मन्दिर, पंडरपुर महाराष्ट्र
कृष्णजन्मभूमि मन्दिर, मथुरा उत्तरप्रदेश
बांके बिहारी मन्दिर, वृन्दावन मथुरा उत्तरप्रदेश
राधारमण मन्दिर, वृन्दावन मथुरा उत्तरप्रदेश
राधावल्लभ मन्दिर, वृन्दावन मथुरा उत्तरप्रदेश
गोविन्ददेव मन्दिर, जयपुर राजस्थान
श्रीनाथ जी मन्दिर, नाथद्वारा राजस्थान
श्रीकृष्ण मठ मन्दिर, उडुपी कर्नाटक
अरुलमिगु पार्थसारथी स्वामी मन्दिर, चेन्नई तमिलनाडु
श्रीकृष्ण गुरुवायुरप्पन मन्दिर (गुरुवायूर मन्दिर), केरल

प्रमुख शिव-मन्दिर

सोमनाथ मन्दिर, काठियावाड़ गुजरात
महाकालेश्वर मन्दिर, उज्जैन मध्यप्रदेश
काशी विश्वनाथ मन्दिर, वाराणसी उत्तरप्रदेश
केदारनाथ मन्दिर, रुद्रप्रयाग उत्तराखण्ड
बैद्यनाथ मन्दिर, देवघर झारखण्ड
श्रीरामनाथ स्वामी मन्दिर, रामेश्वरम तमिलनाडु
बृहदेश्वर मन्दिर (राजराजेश्वरम्), तंजौर तमिलनाडु
विरुपाक्ष मन्दिर, हम्पी कर्नाटक
लिंगराज मन्दिर, भुवनेश्वर ओडिशा

प्रमुख देवी-मन्दिर

वैष्णो देवी मन्दिर, जम्मू कश्मीर
कामाख्या मन्दिर, गुवाहाटी असम
विन्ध्यवासिनी देवी मन्दिर, उत्तरप्रदेश
मीनाक्षी अम्मन मन्दिर, मदुरै तमिलनाडु

4. मन्दिर बनाने की परम्परा का आरम्भ कबसे हुआ ?

यह बहुत प्राचीन परम्परा है। जिसकी समयावधि सुनिश्चित करना बड़ा ही दुरूह विषय है। यद्यपि चारों युगों (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग) में मूर्तिपूजा होती चली आ रही है, मन्दिर बनाए जाते रहे हैं किन्तु त्रेतायुग से विशेष रूप से मन्दिर बनाकर मूर्ति पूजा की परम्परा चली है –

दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मतां नृप।
त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिः कृता॥
ततोऽर्चायां हरिं केचित् संश्रद्धाय सपर्यया।

(श्रीमद्भागवत 7.14.39,40)

'देवर्षि नारद जी कहते हैं – युधिष्ठिर ! त्रेता आदि युगों में जब विद्वानों ने देखा कि मनुष्य परस्पर एक-दूसरे का अपमान आदि करते हैं, तब उन लोगों ने उपासना की सिद्धि के लिये (मन्दिर बनवाकर) भगवान् की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की। तभी से लोग बड़ी श्रद्धा और सामग्री से प्रतिमा में ही भगवान् की पूजा करते हैं।'

सत्ययुग में वैवस्वत मनु के वंश में नाभागनंदन महाभागवत राजर्षि अम्बरीष जी हुए हैं, इन्होंने स्वयं भगवान् श्रीहरि का मन्दिर बनवाकर भगवान् के श्रीविग्रह की स्थापना करके स्वयं मन्दिर में ये सारी सेवा करते थे – **'करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु'** (श्रीमद्भागवत 9.4.18) श्रीअम्बरीष जी अपने हाथों से स्वयं भगवान् श्रीहरि के मन्दिर का मार्जन आदि करते थे।

त्रेतायुग में भगवान् श्रीराम के राज्य में भी अनेकों मन्दिर थे, ऐसा वर्णन प्राप्त होता है – **'देवतायतनानां च राजिभिः परिराजितम्।'**(पद्मपुराण, पातलखण्ड 5.30) स्थान-स्थान पर देव-मन्दिरों की श्रेणियाँ रामराज्य की शोभा बढ़ाती थीं। त्रेतायुग में ही लंका में भक्त विभीषण जी के भवन की शोभा का दर्शन श्रीहनुमान जी ने किया, जिसका वर्णन गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ने किया है – **'भवन एक पुनि दीख सुहावा । हरि मन्दिर तहँ भिन्न बनावा॥'**

(श्रीरामचरितमानस 5.5)

हनुमान जी को एक सुन्दर महल दिखायी दिया। वहाँ उसमें भगवान् का एक अलग मन्दिर बना हुआ था।

द्वापरयुग का तो मुख्य लक्षण ही है मन्दिरों में अर्चाविग्रह की विधिपूर्वक सेवा-पूजा करना **'द्वापरे परिचर्यायाम्'** (श्रीमद्भागवत 12.3.52) इसके अनेकों प्रमाण मिलते हैं। महाभारत में वर्णन मिलता है श्रीअर्जुन जी के द्वारा ब्राह्मण के गोधन की रक्षा के लिए नियमभङ्ग हुआ; अतः उन्हें वन जाना पड़ा। उसी वनगमन काल में वे अंग, वंग और कलिंग देशों में जो कोई भी पवित्र तीर्थ और मन्दिर थे, उन सबमें वे गये। यानी उस काल में भी सब जगह मन्दिर थे।

अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु यानि तीर्थानि कानिचित्।
जगाम तानि सर्वाणि पुण्यानि आयतनानि च॥

(महाभारत, आदिपर्व के अन्तर्गत अर्जुनवनवासपर्व 214.9)

कलियुग के आरम्भिक काल में अर्थात् आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व ही श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ जी के द्वारा ब्रज में कई मन्दिरों का (गोविन्ददेव, हरिदेव, केशवदेव, बलदेव आदि का) निर्माण कराया गया। कालान्तर में भी अनेकों मन्दिर बने जिनका जीर्णोद्धार चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय ने कराया एवं नये मन्दिर भी बनवाये। जिसमें श्रीकृष्णजन्मभूमि मथुरा, श्रीरामजन्मभूमि अयोध्या एवं काशी विश्वनाथ मन्दिर सम्मिलित हैं। इससे ज्ञात होता है कि सम्राट विक्रमादित्य से भी सैकड़ों वर्ष पूर्व से भारत में मन्दिरों का निर्माण होता आ रहा है किन्तु चौथी सदी में गुप्तकाल में भागवत धर्म के अभ्युदय के पश्चात् मन्दिरों का प्रभुत्व विशेष रूप से बढ़ा और बाद में अलग-अलग कालखंड में अन्य शासकों ने भी कई मन्दिरों का निर्माण कराया।

5. मन्दिर निर्माण कराने की विधि क्या है ?

(गर्गसंहिता, विज्ञानखण्ड, अध्याय 6, श्लोकसंख्या 8-24) श्रीवेदव्यास जी के महाराज उग्रसेन के प्रति वचन – सनातन भगवान् श्रीहरि का मन्दिर उत्तरमुख बनवाना चाहिये। उसमें ऊँचा आसन स्थापित करके उसके ऊपर कलश से सुशोभित पीठ स्थापित करे। उसमें तीन सीढ़ी बनाये, जिनके नाम

सत्, चित् एवं आनन्द रखे। आसन को मूल्यवान् वस्त्र से ढककर उस पर रूई की गद्दी बिछा दे। उसके आसपास तकिये लगाकर उन्हें स्वर्ण के तारों से निर्मित वस्त्र से ढक दे। दीवालों पर भाँति-भाँति के चित्र अंकित करे और भीतर पर्दा लगा दे। सब ओर मण्डप बनाये तथा तोरण-बंदनवार, झरोखे, जल के फुहारे तथा जालियों से मन्दिर को खूब सजाया जाय। मन्दिर के आँगन में चाँदी के सुन्दर सभामण्डप बनाये जायँ। वहाँ आँगन के बीच तुलसीजी का मनोहर चबूतरा हो। मन्दिर के बाहरी द्वार पर दो हाथी बनवाने चाहिये। राजन् ! वैसे ही बनावटी दो सिंह भी बैठा दे। मन्दिर का शिखर सोने का हो। शिखर पर उसके नीचे चक्र बनवा दे। मन्दिर के द्वार पर अगल-बगल श्रीहरि के मंगलमय नाम लिखने चाहिये। दीवाल पर एक ओर गदा, पद्म, शंख और शार्ङ्गधनुष अंकित कराये। बायीं ओर तरकस और दाहिनी तरफ केवल बाण की चित्रकारी बनवाये। मन्दिर के पिछले भाग में शतचन्द्र नामक ढाल, नन्दक नामवाली तलवार, हल और मुसल प्रयत्नपूर्वक अंकित कराये। सिंहासन की पीठ पर गोपियों तथा गौओं को, उसकी सीढ़ी पर गोपालों को और किवाड़ पर 'जय' एवं 'विजय' लिखे। देहली पर कल्पवृक्ष, खंभों पर मनोहर लताएँ, जहाँ-तहाँ दीवालों पर पापनाशिनी गंगा, यमुना, वृन्दावन, गोवर्द्धन, चीरहरण तथा रासमण्डल आदि के लीलाचित्र अंकित कराये। फिर प्रयत्न करके चित्रकूट, पञ्चवटी, राम एवं रावण का युद्ध अंकित कराये, किंतु उसमें जानकी-हरण का प्रसंग अंकित न कराया जाय। दसावतार के चित्र, नरनारायणाश्रम, सातों पुरियाँ, तीनों ग्राम, नौ वन और नौ ऊसर भूमि के चित्र अंकित कराये। बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार के चित्रों को अंकित कराके मन्दिर का निर्माण कराये। तदनन्तर उसमें भगवान् श्रीकृष्ण के विग्रह की स्थापना करे। श्रीकृष्ण की किशोर अवस्था हो और वे हाथ में बाँसुरी लिये उसे बजाना ही चाहते हों तथा उनका दाहिना पैर टेढ़ा हो–इस प्रकार का रूप सेवा के लिये सर्वोत्तम माना गया है। भक्त परम भक्ति के साथ इस प्रकार के विग्रहस्वरूप की शीघ्र ही गुरु के द्वारा मन्दिर में प्रतिष्ठा करा दे और फिर अत्यन्त भाव के साथ सेवा में तत्पर हो जाए।

6. मन्दिर बनवाने की महिमा क्या है ?

मन्दिर निर्माण कराने की महिमा का वर्णन प्रायः सभी शास्त्रों में विशद रूप किया गया है, कुछ पुराणों से महिमा का संकलन करके संक्षेप में उसका वर्णन किया रहा है।

(अग्निपुराण, अध्याय-38, श्लोकसंख्या 1-50)

अग्निरुवाच

वासुदेवाद्यालयस्य कृतौ वक्ष्ये फलादिकम्।
चिकीर्षोर्देवधामादि सहस्रजनिपापनुत॥
मनसा सद्मकर्तृणां शतजन्माघनाशनम्।
येऽनुमोदन्ति कृष्णस्य क्रियमाणं नरा गृहम्॥
तेऽपि पापैर्विनिर्मुक्ताः प्रयान्त्यच्युतलोकताम्।
समतीतं भविष्यञ्च कुलानामयुतं नरः॥
विष्णुलोकं नयत्याशु कारयित्वा हरेर्गृहम्।
वसन्ति पितरो हृष्टा विष्णुलोके ह्यलङ्कृताः॥
विमुक्ता नारकैर्दुःखैः कर्तुः कृष्णस्य मन्दिरम्।
ब्रह्महत्यादिपापौघघातकं देवतालयम्॥
फलं यन्नाप्यते यज्ञैर्धाम कृत्वा तदाप्यते।
देवागारे कृते सर्वतीर्थस्नानफलं लभेत्॥
देवाद्यर्थे हतानां च रणे यत्तत्फलादिकम्।
शाठ्येन पांसुना वापि कृतं धाम च नाकदम्॥
स्वर्गं च वैष्णवं लोकं मोक्षमाप्नोति च क्रमात्।

श्रीअग्निदेव के वसिष्ठ जी के प्रति वचन – भगवान् वासुदेव आदि विभिन्न देवताओं के निमित्त मन्दिर का निर्माण कराने से जिस फल आदि की प्राप्ति होती है, अब मैं उसी का वर्णन करूँगा। जो देवता के लिये मन्दिर-जलाशय आदि के निर्माण कराने की इच्छा करता है, उसका वह शुभ संकल्प ही उसके हजारों जन्मों के पापों का नाश कर देता है। जो मन से भावना द्वारा भी मन्दिर का

निर्माण करते हैं, उनके सैकड़ों जन्मों के पापों का नाश हो जाता है। जो लोग भगवान् श्रीकृष्ण के लिये किसी दूसरे के द्वारा बनवाये जाते हुए मन्दिर के निर्माण-कार्य का अनुमोदन मात्र कर देते हैं, वे भी समस्त पापों से मुक्त हो उन अच्युतदेव के लोक (वैकुण्ठ अथवा गोलोकधाम को) प्राप्त होते हैं। भगवान् विष्णु के निमित्त मन्दिर का निर्माण करके मनुष्य अपने भूतपूर्व दस हजार तथा भविष्य में होने वाले दस हजार कुलों को तत्काल विष्णुलोक में जाने का अधिकारी बना देता है। श्रीकृष्ण-मन्दिर का निर्माण करने वाले मनुष्य के पितर नरक के क्लेशों से तत्काल छुटकारा पा जाते हैं और दिव्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो बड़े हर्ष के साथ विष्णुधाम में निवास करते हैं। देवालय का निर्माण ब्रह्महत्या आदि पापों के पुंज का नाश करने वाला है। यज्ञों से जिस फल की प्राप्ति नहीं होती है, वह भी देवालय का निर्माण कराने मात्र से प्राप्त हो जाता है। देवालय का निर्माण करा देने पर समस्त तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है। देवता-ब्राह्मण आदि के लिये रणभूमि में मारे जाने वाले धर्मात्मा शूरवीरों को जिस फल आदि की प्राप्ति होती है, वही देवालय के निर्माण से भी सुलभ होता है। कोई शठता (कंजूसी)-के कारण धूल-मिट्टी से भी देवालय बनवा दे तो वह उसे स्वर्ग या दिव्यलोक प्रदान करने वाला होता है।

श्रेष्ठमायतनं विष्णोः कृत्वा यद्धनवांल्लभेत्॥
कनिष्ठेनैव तत्पुण्यं प्राप्नोत्यधनवान्नरः।
समुत्पाद्य धनं कृत्वा स्वल्पेनापि सुरालयम्॥
कारयित्वा हरेः पुण्यं प्राप्नोत्यभ्यधिकं वरान्।
लक्षेणाथ सहस्रेण शतेनार्धेन वा हरेः॥
कारयन्भवनं याति यत्रास्ते गरुडध्वजः।
बाल्ये तु क्रीडमाना ये पांसुभिर्भवनं हरेः॥
वासुदेवस्य कुर्वन्ति तेऽपि तल्लोकगामिनः।
तीर्थे चायतने पुण्ये सिद्धक्षेत्रे तथाश्रमे॥
कर्तुरायतनं विष्णोर्यथोक्तात्त्रिगुणं फलम्।

धनी मनुष्य भगवान् विष्णु का उत्तम श्रेणी का मन्दिर बनवाकर जिस फल को प्राप्त करता है, उसे ही निर्धन मनुष्य निम्नश्रेणी का मन्दिर बनवाकर भी प्राप्त कर लेता है। धन-उपार्जन कर उसमें से थोड़ा-सा ही खर्च करके यदि मनुष्य देव-मन्दिर बनवा ले तो बहुत अधिक पुण्य एवं भगवान् का वरदान प्राप्त करता है। एक लाख या एक हजार या एक सौ अथवा उसका आधा (50) मुद्रा ही खर्च करके भगवान् विष्णु का मन्दिर बनवाने वाला मनुष्य उस नित्य धाम को प्राप्त होता है, जहाँ साक्षात् गरुड की ध्वजा फहराने वाले भगवान् विष्णु विराजमान होते हैं। जो लोग बचपन में खेलते समय धूलि से भगवान् विष्णु का मन्दिर बनाते हैं, वे भी उनके धाम को प्राप्त होते हैं। तीर्थ में, पवित्र स्थान में, सिद्धक्षेत्र में तथा किसी आश्रम पर जो भगवान् विष्णु का मन्दिर बनवाते हैं, उन्हें अन्यत्र मन्दिर बनाने का जो फल बताया गया है, उससे तीन गुना अधिक फल मिलता है।

बन्धूकपुष्पविन्यासैः सुधापङ्केन वैष्णवम्॥
ये विलिम्पन्ति भवनं ते यान्ति भगवत्पुरम्।
पतितं पतमानं तु तथार्धपतितं नरः॥
समुद्धृत्य हरेर्धाम प्राप्नोति द्विगुणं फलम्।
पतितस्य तु यः कर्ता पतितस्य च रक्षिता॥
विष्णोरायतनस्येह स नरो विष्णुरूपभाक्।
इष्टकानिचयस्तिष्ठेद्यावादायतनं हरेः॥
सकुलस्तस्य वै कर्ता विष्णुलोके महीयते।
स एव पुण्यवान् पूज्य इहलोके परत्र च॥
कृष्णस्य वासुदेवस्य यः कारयति केतनम्।
जातः स एव सुकृती कुलं तेनैव पालितम्॥

जो लोग भगवान् विष्णु के मन्दिर को चूने से लिपाते और उस पर बन्धूक के फूल का चित्र बनाते हैं, वे अन्त में भगवान् के धाम में पहुँच जाते हैं। भगवान् का जो मन्दिर गिर गया हो, गिर रहा हो, अथवा आधा गिर चुका

हो, उसका जो मनुष्य जीर्णोद्धार करता है, वह नवीन मन्दिर बनवाने की अपेक्षा दूना पुण्यफल प्राप्त करता है। जो गिरे हुए विष्णु-मन्दिर को पुनः बनवाता और गिरे हुए की रक्षा करता है, वह मनुष्य साक्षात् भगवान् विष्णु का स्वरुप प्राप्त करता है। भगवान् के मन्दिर की ईंटें जब तक रहती हैं, तब तक उसका बनवाले वाला विष्णुलोक में कुल सहित प्रतिष्ठित होता है। इस संसार में और परलोक में वही पुण्यवान् और पूजनीय है। जो भगवान् श्रीकृष्ण का मन्दिर बनवाता है, वही पुण्यवान् उत्पन्न हुआ है, उसी ने अपने कुल की रक्षा की है।

किं तस्य वित्तनिचयैर्मूढस्य परिरक्षिणः।
दुःखार्जितै यः कृष्णस्य न कारयति केतनम्।
नोपभोग्यं धनं यस्य पितृविप्रदिवौकसाम्॥
नोपभोगाय बन्धूनां व्यर्थस्तस्य धनागमः।
यथा ध्रुवो नृणां मृत्युर्वित्तनाशस्तथा ध्रुवः॥
मूढस्तत्रानुबध्नाति जीवितेऽथ चले धने।
यदा वित्तं न दानाय नोपभोगाय देहिनाम्॥
नापि कार्त्यै न धर्मार्थं तस्य स्वाम्येऽथ को गुणः।
तस्माद्वित्तं समासाद्य दैवाद्वा पौरुषादथ॥
दद्यात्सम्यग् द्विजग्रयेभ्यः कीर्तनानि च कारयेत्।
दानेभ्यश्चाधिकं यस्मात्कीर्तनेभ्यो वरं यतः॥
अतश्च कारयेद्धीमान् विष्ण्वादेर्मन्दिरादिकम्।
विनिवेश्य हरेर्धाम भक्तिमद्भिर्नरोत्तमैः॥
निवेशितं भवेत्कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
भूतं भव्यं भविष्यं च स्थूलं सूक्ष्मं तथेतरत्॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं विष्णोः समुद्भवम्।
तस्य देवाधिदेवस्य सर्वगस्य महात्मनः॥
निवेश्य भवनं विष्णोर्न भूयो भुवि जायते।
यथा विष्णोर्धामकृतौ फलं तद्वद् दिवौकसाम्॥

शिवब्रह्मार्कविघ्नेश चण्डलक्ष्म्यादिकात्मनाम्।
सप्तजन्मकृतं पापं प्रारम्भादेव नश्यति॥
देवालयस्य स्वर्गी स्यान्नरकं स न गच्छति।
कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेन्नरः॥

सदा धन की रक्षा में लगे रहने वाले मुर्ख मनुष्य को बड़े कष्ट से कमाये हुए अधिक धन से क्या लाभ हुआ, यदि वह उससे श्रीकृष्ण का मन्दिर ही नहीं बनवाता। जिसका धन पितरों, ब्राह्मणों और देवताओं के उपयोग में नहीं आता तथा बन्धु-बान्धवों के भी उपयोग में नहीं आ सका, उसके धन की प्राप्ति व्यर्थ हुई। जैसे प्राणियों की मृत्यु निश्चित है, उसी प्रकार कमाये हुए धन का नाश भी निश्चित है। मूर्ख मनुष्य ही क्षणभंगुर जीवन और चंचल धन के मोह में बँधा रहता है। जब धन दान के लिये, प्राणियों के उपभोग के लिये, कीर्ति के लिये और धर्म के लिये काम में नहीं लाया जा सके तो उस धन का मालिक बनने में क्या लाभ है? इसलिये प्रारब्ध से मिले अथवा पुरुषार्थ से, किसी भी उपाय से धन को प्राप्तकर उसे उत्तम ब्राह्मणों को दान दे, अथवा कोई स्थिर कीर्ति बनवावे। चूँकि दान और कीर्ति से भी बढ़कर मन्दिर बनवाना है, इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य विष्णु आदि देवताओं का मन्दिर आदि बनवावे। भक्तिमान् श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा यदि भगवान् के मन्दिर का निर्माण और उसमें भगवान् का प्रवेश (स्थापन आदि) हुआ तो यह समझना चाहिये कि उसने समस्त चराचर त्रिभुवन को रहने के लिये भवन बनवा दिया। ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ भी भूत, वर्तमान, भविष्य, स्थूल, सूक्ष्म और इससे भिन्न है, वह सब भगवान् विष्णु से प्रकट हुआ है। उन देवाधिदेव सर्वव्यापक महात्मा विष्णु का मन्दिर में स्थापन करके मनुष्य पुनः संसार में जन्म नहीं लेता (मुक्त हो जाता है)। जिस प्रकार विष्णु का मन्दिर बनवाने में फल बताया गया है, उसी प्रकार अन्य देवताओं – शिव, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, दुर्गा और लक्ष्मी आदि का भी मन्दिर बनवाने से होता है। देवमन्दिर का प्रारम्भ करने मात्र से सात जन्मों के किये हुए पाप का नाश हो जाता है तथा बनवाने वाला मनुष्य स्वर्गलोक का अधिकारी होता है, वह

नरक में नहीं जाता। इतना ही नहीं, वह मनुष्य अपनी सौ पीढ़ी का उद्धार करके उसे विष्णुलोक में पहुँचा देता है।

यमो यमभटानाह देवमन्दिरकारिणः।
प्रतिमापूजादिकृतो नानेया नरकं नराः।
देवालयाद्यकर्तारि आनेयास्ते विशेषतः॥
उपलेपनकर्तारः सम्मार्जनपराश्च ये।
कृष्णालये परित्याज्यास्तेषां पुत्रास्तथा कुलम्॥
येन चायतनं विष्णोः कारितं तत्कुलोद्भवम्।
पुंसां शतं नावलोक्यं भवद्भिर्दुष्टचेतसा॥
यस्तु देवालयं विष्णोर्दारुशैलमयं तथा।
कारयेन्मृन्मयं वाऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
अहन्यहनि यज्ञेन यजतो यन्महाफलम्।
प्राप्नोति तत्फलं विष्णोर्यः कारयति केतनम्॥
कुलानां शतमागामि समतीतं तथा शतम्।
कारयन् भगवद्धाम नयत्यच्युतलोकताम्॥
सप्तलोकमयो विष्णुस्तस्य यः कुरुते गृहम्।
तारयत्यक्षयाँल्लोकानक्षय्यान् प्रतिपद्यते॥
इष्टकाचयविन्यासो यावन्त्यब्दानि तिष्ठति।
तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्तुर्दिवि संस्थितिः॥
प्रतिमाकृद्विष्णुलोकं स्थापको लीयते हरौ।
देवसद्मप्रतिकृतिप्रतिष्ठाकृत्तु गोचरे॥

यमराज ने अपने दूतों से देवमन्दिर बनाने वालों को लक्ष्य करके ऐसा कहा था, यम बोले – देवालय और देव-प्रतिमा का निर्माण तथा उसकी पूजा आदि करने वाले मनुष्यों को तुम लोग नरक में न ले आना तथा जो देव-मन्दिर आदि नहीं बनवाते, उन्हें ख़ास तौर पर पकड़ लाना। जो भगवान् के मन्दिर में लेप करते या बुहारी लगाते हैं, उनके पुत्रों को तथा उनके वंश को भी छोड़

देना। जिन्होंने भगवान् विष्णु का मन्दिर बनवाया हो, उनके वंश में सौ पीढ़ी तक के मनुष्यों की ओर तुम लोग बुरे भाव से न देखना। जो लकड़ी का, पत्थर का अथवा मिट्टी का ही देवालय भगवान् विष्णु के लिये बनवाता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। प्रतिदिन यज्ञों द्वारा भगवान् की आराधना करने वाले को जो महान् फल मिलता है, उसी फल को, जो विष्णु का मन्दिर बनवाता है, वह भी प्राप्त करता है। जो भगवान् अच्युत का मन्दिर बनवाता है, वह अपनी बीती हुई सौ पीढ़ी के पितरों को तथा होने वाले सौ पीढ़ी के वंशजों को भगवान् विष्णु के लोक को पहुँचा देता है। भगवान् विष्णु सप्तलोकमय हैं। उनका मन्दिर जो बनवाता है, वह अपने कुल को तारता है, उन्हें अक्षय लोकों की प्राप्ति कराता है और स्वयं भी अक्षय लोकों को प्राप्त होता है। मन्दिर में ईंट के समूह का जोड़ जितने वर्षों तक रहता है, उतने ही हजार वर्षों तक उस मन्दिर के बनवाने वाले की स्वर्गलोक में स्थिति होती है। भगवान् की प्रतिमा बनाने वाला विष्णुलोक को प्राप्त होता है, उसकी स्थापना करने वाला भगवान् में लीन हो जाता है और देवालय बनवाकर उसमें प्रतिमा की स्थापना करने वाला सदा भगवान् के लोक में निवास पाता है।

ये ध्यायन्ति सदा बुद्ध्या करिष्यामो हरेर्गृहम्।
तेषां विलीयते पापं पूर्वजन्मशतोद्भवम्॥

जो लोग 'श्रीहरि-मन्दिर निर्माण कराऊँगा,' मन ही मन इस प्रकार संकल्प करता है, उसका पूर्व शतजन्मार्जित पातक विनष्ट होता है।

(श्रीमद्भागवत, स्कन्द 11, अध्याय 11, श्लोकसंख्या 38,39)

ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः।
उद्यानोपवनाक्रीड पुरमन्दिरकर्मणि॥

भगवान् श्रीकृष्ण के उद्धव जी के प्रति वचन – मन्दिरों में मेरी मूर्तियों की स्थापना में श्रद्धा रखे। यदि यह काम अकेला न कर सके, तो औरों के साथ मिलकर उद्योग करे। मेरे लिये पुष्पवाटिका, बगीचे, क्रीड़ा के स्थान, नगर और मन्दिर बनवावे।

सम्मार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः।
गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद् यदमायया॥

सेवक की भाँति श्रद्धाभक्ति के साथ निष्कपट भाव से मेरे मन्दिरों की सेवा-शुश्रूषा करे–झाड़े-बुहारे, लीपे-पोते, छिड़काव करे और तरह-तरह के चौक पूरे।

(श्रीमद्भागवत, स्कन्द 11, अध्याय 27, श्लोकसंख्या 50-55)

मदर्चां सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद् दृढम्।
पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान्॥

भगवान् श्रीकृष्ण के उद्धव जी के प्रति वचन – यदि शक्ति हो तो उपासक सुन्दर और सुदृढ़ मन्दिर बनवाये, उसमें मेरी प्रतिमा स्थापित करे, सुन्दर-सुन्दर फूलों के बगीचे लगवा दे; नित्य की पूजा, पर्व की यात्रा और बड़े-बड़े उत्सवों की व्यवस्था कर दे।

पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम्।
क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात्॥

जो मनुष्य पर्वों के उत्सव, प्रतिदिन की पूजा लगातार चलने के लिये खेत, बाजार, नगर अथवा गाँव मेरे नाम पर समर्पित कर देते हैं, उन्हें मेरे समान ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम्।
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात्॥

मेरी मूर्ति की प्रतिष्ठा करने से पृथ्वी का एकच्छत्र राज्य, मन्दिर-निर्माण कराने से त्रिलोकी का राज्य, पूजा आदि की व्यवस्था करने से ब्रह्मलोक और तीनों के द्वारा मेरी समानता प्राप्त होती है।

मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति।
भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम्॥

जो निष्काम-भाव से मेरी पूजा करता है, उसे मेरा भक्तियोग प्राप्त हो जाता है और उस निरपेक्ष भक्तियोग के द्वारा वह स्वयं मुझे प्राप्त कर लेता है।

यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः।
वृत्तिं स जायते विड्भुग् वर्षाणां अयुतायुतम्॥

जो अपनी दी हुई तथा दूसरों की दी हुई देवता और ब्राह्मण की जीविका का हरण कर लेता है, वह करोड़ो वर्षों तक विष्ठा का कीड़ा होता है।

कर्तुश्च सारथेहेतोः अनुमोदितुरेव च।
कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम्॥

जो लोग ऐसे कामों में सहायता, प्रेरणा अथवा अनुमोदन करते हैं, वे भी मरने के बाद प्राप्त करने वाले के समान ही फल के भागीदार होते हैं। यदि उनका हाथ अधिक रहा तो फल भी उन्हें अधिक ही मिलता है।

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय 59, श्लोकसंख्या 42-44)

प्रासादं कुरुते यस्तु विष्णुलिङ्गस्य मानवः।
त्रिकाण्डं पंचकाण्डं च सुशोभं सुघटान्वितम्॥
इतोऽधिकं तु यो दद्यान्मृन्मयं वादृषन्मयम्।
वसुवृत्ति सुपूर्णं च सुरम्यं दिव्यभूतलम्॥
प्रतिष्ठाकर्म संपन्नं किङ्करादिभिरावृतम्।
सुलिंगमिष्टदेवस्य विष्णोरेव विशेषतः।
कृत्वा च विष्णु सायुज्यं समाप्नोति नरोत्तमः॥

श्रीवेदव्यास जी के वचन – जो मनुष्य भगवान् श्रीविष्णु की प्रतिमा के लिए तीन या पाँच खंभों से युक्त, शोभासम्पन्न और सुन्दर कलश से विभूषित मन्दिर बनवाता है, अथवा इससे भी बढ़कर जो मिट्टी या पत्थर का देवालय निर्माण कराता है, उसके खर्च के लिए धन और वृत्ति लगाता है तथा मन्दिर में अपने इष्टदेव की, विशेषतः भगवान् श्रीविष्णु की प्रतिमा स्थापित करके शास्त्रोक्त विधि से उसकी प्रतिष्ठा कराता है, वह नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीविष्णु के सायुज्य को प्राप्त होता है।

(वामन पुराण, अध्याय 94, श्लोकसंख्या 37-43)

यः कारयेन्मन्दिरं केशवस्य पुण्याँल्लोकान् स जयेच्छाश्वतान् वै॥

श्रीप्रह्लाद जी के राजा बलि के प्रति वचन – केशव भगवान् का मन्दिर-निर्माण कराने वाला मनुष्य स्थायी पुण्यलोकों (वैकुण्ठादि) को प्राप्त करता है।

पितामहस्य पुरतः कुलान्यष्टौ तु यानि च।
तारयेदात्मना सार्द्धं विष्णोर्मन्दिरकारकः॥

विष्णु भगवान् के मन्दिर का निर्माण कराने वाला पुरुष अपने पितामह से आगे के आठ कुलपुरुषों का उद्धार करता है।

अपि नः स कुले कश्चिद् विष्णुभक्तो भविष्यति।
हरिमन्दिरकर्ता यो भविष्यति शुचिव्रतः॥
अपि नः सन्ततौ जायेद् विष्वालयविलेपनम्।
सम्मार्जनं च धर्मात्मा करिष्यति च भक्तितः॥
अपि नः सन्ततौ जातौ ध्वजं केशवमन्दिरे।
दास्यते देवदेवाय दीपं पुष्पानुलेपनम्॥
महापातकयुक्तो वा पातकी चोपपातकी।
विमुक्तपापो भवति विष्वायतनचित्रकृत्॥

दैत्य! पितरों ने यदुश्रेष्ठ योगी एवं तपस्वी ज्यामघ के सामने इस गाथा का वर्णन किया था। क्या हमारे कुल में पवित्र व्रत धारण करने वाला इस प्रकार का कोई विष्णुभक्त उत्पन्न होगा जो हरि का मन्दिर बनवायेगा? क्या हमारी सन्तति में कोई विष्णु-मन्दिर में श्रद्धापूर्वक चूने आदि से सफाई कराने वाला और झाड़ू देने वाला धार्मिक उत्पन्न होगा? क्या हमारी सन्ततियों में ऐसा कोई होगा जो केशव के मन्दिर में ध्वजा का दान करेगा और देवदेवेश्वर को दीप, पुष्प और सुगन्धित चन्दन आदि प्रदान करेगा?

महापातकी, पातकी अथवा उपपातकी व्यक्ति विष्णु-मन्दिर को भाँति-भाँति के रंगों से सजाकर अथवा दिव्य चित्र बनाकर पाप से मुक्त हो जाता है।

(स्कन्द पुराण)

आरम्भे कृष्णधिष्ण्यस्य सप्तजन्मनि यत् कृतम्।
पापं विलयमाप्नोति नरकादुद्धरेत् पितॄन्॥

श्रीकृष्ण-मन्दिर निर्माण करने में प्रवृत्त होने से ही सप्तजन्मकृत पातक विनष्ट हो जाता है एवं उस पुरुष के पितृगणों का नरक से उद्धार हो जाता है।

(देवी भागवत)

मूलाच्छतगुणं पुण्यं प्राप्नुयाज्जीर्णकारकः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जीर्णस्योद्धारमाचरेत्॥

नया मन्दिर बनाने की अपेक्षा प्राचीन मन्दिर का जीर्णोद्धार कराने से सौ गुना पुण्य प्राप्त होता है। अतः पूर्ण प्रयत्न करके जीर्णोद्धार कार्य कराना चाहिए।

(नृसिंह पुराण, अध्याय 32, श्लोकसंख्या 12)

यः कुर्याच्छोभनं वेश्म नरसिंहस्य भक्तिमान्।
स सर्वपापनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥

भृगु जी के राजकुमार सहस्त्रानीक के प्रति वचन – जो भक्तिपूर्वक नृसिंहदेव का सुन्दर मन्दिर निर्माण कराता है, वह सब पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक में स्थान पाता है।

(नृसिंह पुराण, अध्याय 33, श्लोकसंख्या 13,14)

नरसिंहस्य नित्यं च यः सम्मार्जनमारभेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स मोदते॥
गोमयेन मृदा तोयैर्यः करोत्युपलेपनम्।
स चाक्षयफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते॥

मार्कण्डेय जी के राजकुमार सहस्त्रानीक के प्रति वचन – जो भगवान् नरसिंह के मन्दिर में नित्य झाड़ू लगाता है, वह सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में आनन्दित होता है। जो गोबर, मिट्टी तथा जल से वहाँ की भूमि लीपता है, वह अक्षय फल प्राप्त करके विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है।

7. मन्दिर निर्माण कराने में निष्ठावान कुछ विशिष्ट भक्तों की गाथाएँ

'श्रीरंगनाथ भगवान्' का मन्दिर निर्माण कराने हेतु भक्त 'मामा-भानजे' का अद्भुत प्रयास

(श्रीनाभादासजी कृत 'श्रीभक्तमाल', छप्पय-51)

आशै अगाध दुहुँ भक्त को हरि तोषन अतिशै कियो।
'रङ्गनाथ' को सदन करन बहु बुद्धि बिचारी।
कपट धर्म रचि जैन-द्रव्य-हित देह विसारी।
..... ॥

भावार्थ–मामा और भानजे इन दोनों भक्तों के अभिप्राय अत्यन्त ही गम्भीर थे। इन्होंने अपनी लोक-वेद से विलक्षण भक्ति के द्वारा भगवान् को अत्यन्त प्रसन्न किया। इन्होंने श्रीरंगनाथ जी का मन्दिर बनवाने के लिए धन प्राप्त करने के अनेक उपाय सोचे परन्तु धन प्राप्ति न हुई; तब छल करके जैनी बन गये और धन हेतु अपने शरीर का भी त्याग किये।

(प्रियादासजी कृत 'भक्तिरस-बोधिनी टीका', कवित्त - 212-215)

दो भक्त थे, उनमें एक मामा और दूसरा भानजा था, इन दोनों की भक्ति का मर्म अत्यन्त गंभीर है। इन्होंने अपनी सुदृढ़भक्ति से प्रभु को कैसे सन्तुष्ट किया, इस बात को सुनकर चित्त में धारण कीजिये। मामा-भानजे दोनों ज्ञान-भक्ति के स्वरूप अर्थात् परमभक्त थे। उन्हें संसार से पूर्ण वैराग्य हो गया और वे घर छोड़कर एकान्त में भगवान् का भजन करने के लिए वन को चले गये।

वहाँ उन्होंने श्रीरंगनाथ भगवान् की अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा (मूर्ति) देखी परन्तु उस विग्रह को स्थापित करने के लिए कोई मन्दिर नहीं था। तब दोनों भक्तों ने निर्णय किया कि हमलोग अब सब कामों को छोड़कर भगवान् श्रीरंगनाथजी का सुन्दर मन्दिर बनावेंगे। मन्दिर बनाने के लिए वे धन की प्राप्ति के लिए भ्रमण करने लगे, बहुत घूमे, परन्तु अनेक उपाय करने पर भी पर्याप्त

धन नहीं मिला। तत्पश्चात् एक स्थान पर उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा तो वहाँ उन्हें धन मिलने की आशा हुई अतः दोनों को इससे बड़ा सुख हुआ।

मामा-भानजे दोनों भक्तों ने देखा कि एक सरावगियों (जैनियों) का मन्दिर है और वहाँ जो प्रतिमा है वह पारस की है। यदि इसकी चोरी करके इसे विक्रय करदें तो काफी मात्रा में धन मिल जाएगा, जिससे की रंगनाथ भगवान् का दिव्य-भव्य मन्दिर बनवा सकेंगे।

यद्यपि वैदिक मतानुयायियों को जैनी मन्दिरों में जाना पापकर्म है, ऐसा वेदों ने बताया है परन्तु इन दोनों भक्तों ने विचार किया कि-हमारे प्रभु श्रीरंगनाथ जी सुख पावें, हमें वही कार्य करना चाहिए। प्रभु के निमित्त अनुचित कर्म करके यदि हम नरक में गये तो भी हमें कोई चिन्ता नहीं है। यानी उनके मन में प्रभु के सुखविधान के आगे आत्मपतन की जरा-सी भी शंका नहीं हुई और उन्होंने विलम्ब किये बिना ही जैन-सम्प्रदाय की दीक्षा ले ली।

मन्दिर में रहकर उन दोनों ने ऐसी सेवा की, जिससे सभी लोगों का मन इनकी ओर खिंचा, जैसे कि केवड़ा के फूल की उत्कट गन्ध की ओर खिंचता है। सम्पूर्ण जैन समाज को इन्होंने अच्छी प्रकार प्रसन्न कर लिया। सब लोगों ने मन्दिर का सारा भार इनको सौंप दिया। तब ये विचार करने लगे कि-मूर्ति की चोरी किस प्रकार करें। अन्त में पता लगाते-लगाते इन्होंने मन्दिर बनाने वाले कारीगरों से भेद पाया। उन्होंने बताया कि मन्दिर के शिखर को खोलकर मार्ग बनाया जा सकता है। (मन्दिर में जाने का मार्ग न था, केवल इतना छिद्र था कि हाथ डालकर पूजन हो सके)।

एक दिन अवसर पाकर उन दोनों भक्तों ने कलश के पेंच को घुमाया, वह खुल गया। तब मामाजी रस्सी के सहारे मन्दिर के भीतर घुस गये और भानजा ऊपर ही रह गया। मामा ने रस्सी में मूर्ति बाँध दी भानजे ने उसे ऊपर खींच लिया। फिर रस्सी के सहारे मामाजी आराम से चढ़ गये। परन्तु शिखर के छेद से जब निकलने लगे तब उसमें उनका शरीर फँस गया।

अब मन्दिर बन जायगा, इस अति सुख से फूली देह के फँस जाने पर मामा भक्त को दुःख न हुआ। उन्होंने भानजे से कहा कि तुम मेरा सिर काट

लो, जिससे लोग वैष्णववेष की निन्दा न करें। तब भानजे ने अपनी भुजाओं से पकड़कर मामाजी को खींचकर निकालना चाहा परन्तु उनका शरीर न निकल सका। कारण कि-वह आनंदवश और फूलकर सवाया हो गया था।

ईश्वर की ऐसी ही इच्छा है, ऐसा विचारकर भानजे ने मामा की आज्ञा का पालन किया अर्थात् उनका सिर काट लिया और कटा हुआ सिर तथा पारस की मूर्ति लेकर वहाँ से चल दिया।

मामा के बिना भानजे से जीवित नहीं रहा जाता था। परन्तु श्रीरंगनाथजी का मन्दिर बनाने की उत्कट अभिलाषा में मन मग्न था अतः भानजे ने विचारा कि-यदि मामा के वियोग में, मैं भी अपना शरीर छोड़ दूँ तो मन्दिर के निर्माण के आशारूपी समुद्र को कैसे पार कर सकूँगा। इसलिए उचित यही है कि जहाँ मन्दिर बनाना है उसी ओर चलूँ और मन्दिर बनवाऊँ, मामा की आज्ञा का पालन करूँ।

यह निश्चय करके कावेरी द्वीप में जहाँ श्रीरंगनाथजी की प्रतिमा थी और जहाँ पर दोनों ने मन्दिर बनाने का निश्चय किया था उस भूमि पर भानजे ने आकर देखा तो वहाँ मन्दिर की नींव खुद रही है। यह देखकर भानजे को बड़ा दुःख हुआ उसने अपने मन में विचारा कि-निर्माण कार्य आरम्भ करने में मुझे विलम्ब हो गया, यहाँ किसी दूसरे ने मन्दिर बनवाना प्रारम्भ कर दिया है। आगे जाकर देखा तो वही परम-भाग्यशाली मामाजी हैं जिनका सिर अपने हाथों से काटा था। वे ही नींव खुदवा रहे हैं।

(भगवान् की कृपा से वे पुनर्जीवित होकर भानजे से पहले ही आ गए थे और भगवान् के मन्दिर की नींव का कार्य प्रारम्भ करा दिया था) परस्पर प्रसन्न होकर दोनों मामा-भानजे एक-दूसरे के गले से लिपट गये और एक-दूसरे को प्रेम से देखकर उनके नेत्र खिल गये।

इस भक्त-मिलन के सुख को वही जान सकता है जो भक्त और भगवान् का परम अनुरागी हो। दोनों ने परम-विशाल मन्दिर बनवाया और उसमें श्रीरंगनाथजी को पधराया जो कि अद्यावधि दर्शनीय है।

श्रीराधावल्लभ जी का मन्दिर-निर्माण कराने हेतु भक्त 'सुन्दरदासजी' का अद्भुत समर्पण

(श्रीभगवत मुदित जी कृत 'रसिक-अनन्यमाल')

सुंदर! मन्दिर की टहल, कीनी अति रुचि मानि।
सफल करी संपति सकल, लगी ठिकाने आनि॥
अंगीकृत ताकों कियौ, परम रसिक सिरमौर।
करुणा निधि बहु कृपा करि, दीनी सनमुख ठौर॥

भक्त श्रीसुन्दरदासजी ने ठाकुर श्रीराधावल्लभलाल के मन्दिर-निर्माण की सेवा बड़ी रुचि के साथ सम्पन्न की और उन्होंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को उचित स्थल में लगाकर सफल कर दिया। फलस्वरूप परम रसिक शिरोमणि ठाकुर श्रीराधावल्लभलालजी ने सुन्दरदास एवं उनकी समर्पित सम्पूर्ण सम्पत्ति को सहर्ष स्वीकार करके अपने मन्दिर के सम्मुख उन्हें निवास-स्थल दिया। करुणा-निधान श्रीजी की यह बहुत बड़ी कृपा हुई।

श्रीसुन्दरदासजी उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले के निवासी थे। ये बादशाह अकबर की नवरत्न सभा के सदस्य अब्दुर्रहीम खानखाना के दीवान थे और इनका बादशाह अकबर बहुत आदर करते थे।

उस काल में अनेक हिन्दू राजाओं ने अनेकानेक मन्दिरों का निर्माण कराया। इसी क्रम में कुछ लोग मन्दिर बनवाने की अभिलाषा लेकर राधावल्लभ मन्दिर के तत्कालीन सेवाधिकारी गो. श्रीवनचन्द्रजी के पास भी आये। इनमें बादशाह अकबर के एक मनसबदार गोपालसिंह जादौं सर्वप्रथम थे। गो. श्रीवनचन्द्रजी ने उनसे कहा कि तुम्हारा प्रस्ताव तो ठीक है; किन्तु यहाँ की एक बात बहुत अटपटी है, जो तुम्हें अच्छी नहीं लगेगी। वह बात यह है कि–"जब ठाकुरजी (राधावल्लभलाल) नव निर्मित मन्दिर में विराजमान होंगे, उसके एक वर्ष के बीच में ही मन्दिर निर्माता की मुत्यु हो जायेगी।" गोपालसिंह जादौं इस बात को सुनकर अत्यन्त उदास हो गए और मृत्यु के डर से उठकर वापिस चला गए। उसके बाद आमेर नरेश राजा मानसिंह तथा अन्य अनेकों व्यक्ति मन्दिर

बनवाने की लालसा के साथ यहाँ आये; किन्तु मृत्यु से भयभीत हो जाने के कारण, किसी ने भी मन्दिर बनवाने का साहस नहीं दिखाया और सभी लौटकर वापिस चले गये।

एक बार गो. श्रीवनचन्द्रजी अपने किसी शिष्य विशेष की प्रीतिपूर्ण प्रार्थना के वशीभूत होकर दिल्ली पधारे और उस शिष्य के यहाँ ठहर कर उपदेश करने लगे। उनके दिल्ली में रहने वाले अन्य शिष्यगण भी वहीं आकर उनके दर्शन एवं उनके उपदेशों से अपने आप को लाभान्वित करने लगे।

सुन्दरदासजी, गो. श्रीवनचन्द्रजी के छोटे भाई गो. श्रीगोपीनाथजी, जो देववन में रहते थे, के शिष्य थे। जब इन्होंने अपने गुरु के बड़े भाई के दिल्ली पधारने की खबर सुनी, तो इन्होंने भी अपने घर पर उनकी पधरावनी की और उन्हें एक लाख रुपये भेंट करते हुए उनसे प्रार्थना की कि अब आप स्थाई रूप से वृन्दावन में रहते हुए, इस धन से श्रीराधावल्लभलालजी की अपनी मनरुचती सेवा अबाध रूप से कर सकते हैं। गो. श्रीवनचन्द्रजी, सुन्दरदासजी की घमंड से भरी इस बात को सुनकर बिगड़ उठे और बोले, "अरे मूढ़ ! स्वयं प्रभु भी भक्तों के अधीन रहते हैं और भक्त जब उनको जहाँ पुकारते हैं, वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। ऐसा ही स्वभाव उनके भक्तों का होता है। वे भी संसार का हित करते हुए विचरण करते हैं और जहाँ भी वे जाते हैं, प्रभु की प्रेरणा से ही जाते हैं; क्योंकि भक्त कभी स्वतन्त्र नहीं होते।" यह कहकर गो. श्रीवनचन्द्रजी, सुन्दरदासजी की भेंट को वहीं रखी हुई छोड़कर, श्रीवृन्दावन चले आये। इस घटना से सुन्दरदासजी को बहुत पश्चाताप और आत्मग्लानि होने लगी और तब इन्होंने यह प्रण कर लिया कि जब तक गुसाईं जी प्रसन्न नहीं होंगे, तब तक मैं प्रसाद ग्रहण नहीं करूँगा, केवल दूध पीकर ही अपना गुजारा करूँगा।

देववन में सुन्दरदासजी के गुरु गो. श्रीगोपीनाथजी ने जब यह घटना सुनी, तब वह इन्हें अपने साथ लेकर, अपने ज्येष्ठ भ्राता के पास वृन्दावन आये और उन्होंने इनके अपराध को क्षमा करने की प्रार्थना की। भाई के आग्रह पर गो.श्रीवनचन्द्रजी ने सुन्दरदासजी को क्षमा करके प्रसाद ग्रहण कराया; किन्तु इनकी भेंट ग्रहण नहीं की। सुन्दरदासजी ने गो. श्रीवनचन्द्रजी के चरणों में गिरते

हुए उनसे पुनः प्रार्थना की कि महाराजश्री ! यदि आप यह भेंट ग्रहण नहीं करते हैं तो आप मुझे श्रीराधावल्लभलालजी के मन्दिर के निर्माण की आज्ञा ही प्रदान कर दें। जिससे कि मैं इस तरह अपने इष्ट की सेवा कर इस असार संसार से पार हो सकूँ । गुसाईं जी ने इनके सामने भी वही शर्त रखी कि मन्दिर बनने पर, श्रीठाकुरजी के विराजमान होने के एक साल के भीतर, तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। सुन्दरदास जी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरे पूर्वभाग्य का उदय होने जा रहा है; क्योंकि जो वृन्दावन की रज ब्रह्मादिकों को भी दुर्लभ है, उसे मैं आपकी कृपा से, आपका कहलाकर, सहज ही प्राप्त कर लूँगा। मेरे मन में यह अभिलाषा अवश्य है कि यदि मैं आपके द्वारा किये गये एक वर्ष के सम्पूर्ण उत्सवों का सुख ही देख सकूँ तो यह मेरा अहो भाग्य ही होगा। मेरी मृत्यु के बाद आप एक कृपा और करें कि मन्दिर के बिल्कुल सामने मेरी समाधि बनवा दें। प्रभु ने भी स्वप्न में गो. श्रीवनचन्द्रजी से कहा कि सुन्दरदासजी जो चाहते हैं, उसे वैसा करने की आज्ञा देकर उसका मनोरथ पूर्ण करें। गो. श्रीवनचन्द्रजी ने सुन्दरदासजी को इस प्रभु-आज्ञा को सुनाते हुए, इन्हें मन्दिर निर्माण करने की आज्ञा दे दी।

मन्दिर निर्माण की आज्ञा को सुनते ही सुन्दरदासजी को ऐसा लगा कि इनके प्राणों को संजीवनी शक्ति प्राप्त हो गई हो। लाल पत्थरों द्वारा बनवाये गये इस मन्दिर के निर्माण कार्य में सुन्दरदासजी ने बिना किसी संकोच किये खुले मन से अत्यधिक धन खर्च किया। मन्दिर निर्माण का यह कार्य तीन वर्षों में पूरा हो गया।

इस नव निर्मित मन्दिर में श्रीराधावल्लभलालजी का प्रथम पाटोत्सव वि.सं. 1641 की कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी के दिन हुआ था। इस दिन को चिर स्मरणीय बनाने के लिये सुन्दरदास जी ने किसी प्रकार की कोई कमी नहीं रखी। मन्दिर में आने-जाने वालों के लिये दिव्य पाँवड़े बिछाये गये, द्वार पर दुन्दुभि आदि विविध वाद्यन्त्र बजाये गये, मन्दिर को झालरों, पताकाओं एवं वन्दनवारों से सजाया गया, परमेष्ट श्रीराधावल्लभलालजी को नवीन वस्त्र एवं दिव्य आभूषण धारण कराये गये, गुरु एव गुरुकुल का पूजन करके उन्हें सम्मानित

किया गया, सन्तों एवं रसिकों को यथोचित भेंट-दक्षिणा दी गई, सम्पूर्ण ब्रज के ब्रजवासियों को जाति-भेद छोड़कर भोजन कराया गया, अष्ट प्रहर का समाज-गान का आयोजन किया गया तथा गुणी-गन्धर्वों को पुरुस्कृत किया गया। इस प्रकार इस पट्ट महोत्सव पर सुन्दरदासजी ने सभी को सन्तुष्ट करने का पूर्ण प्रयास किया तथा वे सब भी इनके भाग्य की सराहना करते हुए इनकी जय-जयकार करने लगे।

इसी प्रकार एक वर्ष के सभी उत्सवों को भी इन्होंने हार्दिक उल्लास के साथ अत्यन्त धूमधाम से आयेजित किया और जब एक वर्ष पश्चात वही दिन लौटकर आया, जिस दिन प्रभु को मन्दिर मे पधराया गया था, तो सुन्दरदासजी देह त्यागने के लिए पूर्ण रूप से तैयार हो गये। इन्होंने श्रीठाकुरजी का चरणोदक लिया और गुरुजनों का दर्शन करके उनको भेंट चढ़ाई। उसके बाद समाजियों ने श्रीहित चतुरासी जी का यह पद गाया –

बनी वृषभानुनन्दिनी आजु।
भूषन-वसन विविध पहिरे तन, पिय मोहन हित साजु॥
हाव-भाव लावन्य भृकुटि लट, हरत जुवति-जन पाजु।
ताल भेद औघर सुर सूचत, नूपुर किंकिनि बाजु॥
नव निकुञ्ज अभिराम श्याम सँग, नीकौ बन्यौ समाजु।
जै श्रीहित हरिवंश विलास-रास जुत, जोरी अविचल राजु॥

सुन्दरदासजी ने श्रीश्यामा-श्याम का हृदय में ध्यान करते हुए एवं मुख से पद का गान करते हुए, उपस्थित सब लोगों को दण्डवत प्रणाम किया और प्राण त्याग दिये। गो. श्रीवनचन्द्रजी ने भी सुन्दरदासजी को दिये वचनानुसार वि.सं. 1642 में इनका स्मारक-स्थल मन्दिर के बाहरी प्रवेश द्वार के सामने ही बनवा दिया।

यह धन कोटि अनर्थ करावै। विषै-भोग हित नर्क बसावै॥
सो धन जो प्रभु के हित खरचै। हरि-मन्दिर करि विधिवत अरचै॥
तौ कुल सहित नर्क तैं निकसै। प्रभु कौं निरखि कमल-सौ विकसै॥

वस्तुत: संसार में 'धन' अनर्थता का मूल है; किन्तु वही जब प्रभु की सेवा में लगा दिया जाता है तो नरक से उद्धार करने वाला बन जाता है। अपना तन-मन और धन 'श्रीजी की सेवा' में लगाकर सुन्दरदासजी ने 'वृन्दावन नित्य-विहार-रस' की प्राप्ति की।

8. मन्दिर निर्माण में धन या शरीर से सेवा करने की क्या महिमा है?

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवत में कहा है–**'एतावज्जन्म साफल्यं देहिनामिह देहिषु। प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा॥'** अर्थात् संसार के समस्त प्राणियों के जीवन की सफलता इतने में ही है कि जहाँ तक हो सके धन-संपत्ति के द्वारा, बुद्धि (विवेक-विचार) के द्वारा, वाणी (प्रवचन-व्याख्यान) और प्राणों (शरीर-इन्द्रिय) से सदा श्रेय का (भगवत्सेवा या भगवत्स्वरूप समग्र प्राणियों की सेवा का) आचरण किया जाय।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने भी भगवान् की तीन प्रकार की सेवा बताई है – तनुजा (शरीर से), वित्तजा (धन से) और मानसी (मन से); यद्यपि इसमें भगवान् की मानसी सेवा सर्वोत्तम है किन्तु उसकी सिद्धि की प्राथमिक सीढ़ी है शरीर व धन से भगवान् की सेवा करना।

भगवान् का मन्दिर (भवन) निर्माण कराना यह महत् पुण्यकर्म है; इस पावन कार्य में जो धन से सम्पन्न हैं उन्हें यथोचित धन से सहयोग देना चाहिए एवं जो धन देने में सक्षम नहीं हैं उन्हें निष्काम भाव से यानी बिना मजदूरी के मन्दिर के कार्य में शरीर से सेवा करना चाहिए, इसे 'कार-सेवा' भी कहते हैं। कार का अर्थ होता है 'हाथ' अर्थात् हाथों से (शरीर से) सेवा करना। जो लोग किसी धार्मिक कार्य या संस्था के लिए परोपकार से जुड़ा काम 'नि:स्वार्थ व नि:शुल्क' करते हैं, उन्हें 'कार-सेवक' कहा जाता है।

इसके अलावा मन्दिरों में होने वाले पर्वों के उत्सव अथवा प्रतिदिन की पूजा लगातार चलने के लिये सामर्थ्यवान लोगों को यथोचित मात्रा में अपनी जमीन भी भगवान् के मन्दिर के नाम पर समर्पित करनी चाहिए।

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवत 11.27.51 में कहा है कि जो ऐसा करता है उसे मेरे समान ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। जो लोग ऐसे कामों में सहायता देते हैं, ऐसे कार्य करने की प्रेरणा देते हैं अथवा जो उसका अनुमोदन करते हैं, वे भी मरने के बाद प्राप्त उस कार्य को करने वाले के समान ही फल के भागीदार होते हैं।

ब्रजमण्डल के रसिक संत श्रीनागरीदास जी महाराज ने ब्रज-वृन्दावन धाम के गधों की भूरि-भूरि प्रसंशा की है क्योंकि ब्रजभूमि में स्थित श्रीराधा-माधव के मन्दिर और संतों के आश्रमों के निर्माण में इन गदहों का बड़ा योगदान रहा है; इसलिए ये धन्य हैं।

धन-धन वृन्दावन के गदहा।
चूना माटी ईंट के ढोहक, साधुन के सुख सधहा॥
हरि मन्दिर अरु कुंज घाट सब इनहिं पीठनि बने।
'नागर' ये परमारथी पूरे, या दुर्लभ रज सने॥

ब्रज-वृन्दावन के गदहा धन्य हैं! धन्य हैं!! क्योंकि ये (मन्दिरों व आश्रमों के निर्माण के लिए) चूना, मिट्टी और ईंटों को ढोते हैं और साधुओं के सुख का विधान करते हैं। ब्रज-वृन्दावन में बने मन्दिर, कुञ्ज-निकुंजें और कुंडों-सरोवरों पर या यमुना किनारे बने घाट सब इन्हीं गदहों के परिश्रम से बने हैं, ये ही अपनी पीठ पर (चूना, मिट्टी, ईंट) ढोकर लाये। अतः ये पूर्ण रूप से परम परमारथी हैं क्योंकि हर समय इस दुर्लभ ब्रजरज में सने रहते हैं।

धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशान्ति।
गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य मृत्युं न पश्यन्ति दुरन्तवीर्यम्॥

(श्रीमद्भागवत 11.5.12)

धन का एकमात्र फल है धर्म; अर्थात् धन को धर्म के कार्य में लगाना ही उसकी सार्थकता है, ऐसा करने से परमतत्त्व का ज्ञान और उसकी निष्ठा-अपरोक्ष अनुभूति सिद्ध होती है और परम शान्ति की प्राप्ति होती है। परन्तु यह कितने खेद की बात है कि लोग उस धन का उपयोग घर-गृहस्थी के स्वार्थों में या कामभोग में ही करते हैं और अटल सत्य मृत्यु को नहीं देखते।

मन्दिर-निर्माण आदि धार्मिक कार्यों में निष्काम भाव से सेवा करने की महिमा 'राजा धर्ममूर्ति' की कथा

(पद्म पुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय-19)

पुलस्त्यजी कहते हैं–राजन् ! पूर्वकाल की बात है–बृहत् नामक कल्प में धर्ममूर्ति नाम के एक राजा थे, जिनकी इन्द्र के साथ मित्रता थी। उन्होंने सहस्रों दैत्यों का वध किया था। सूर्य और चन्द्रमा भी उनके तेज के सामने प्रभाहीन जान पड़ते थे। उन्होंने सैकड़ों शत्रुओं को परास्त किया था। वे इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। मनुष्यों से उनकी कभी पराजय नहीं हुई थी। उनकी पत्नी का नाम था भानुमती। वह त्रिभुवन में सबसे सुन्दरी थी। उसने लक्ष्मी की भाँति अपने रूप से देवसुन्दरियों को भी मात कर दिया था। भानुमती ही राजा की पटरानी थी। वे उसे प्राणों से भी बढ़कर मानते थे। एक दिन राजसभा में बैठे हुए महाराज धर्ममूर्ति ने विस्मय-विमुग्ध हो अपने पुरोहित मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी को प्रणाम करके पूछा–'भगवन् ! किस धर्म के प्रभाव से मुझे सर्वोत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति हुई है ? मेरे शरीर में जो सदा उत्तम और विपुल तेज भरा रहता है–इसका क्या कारण है ?'

वसिष्ठजी ने कहा–राजन् ! प्राचीन काल में एक लीलावती नाम की वेश्या थी, जो सदा भगवान् शंकर के भजन में तत्पर रहती थी। एक बार उसने पुष्कर में चतुर्दशी को नमक का पहाड़ बनाकर सोने की बनी देवप्रतिमा के साथ विधिपूर्वक दान किया था। 'शुद्ध' नाम का एक सुनार था, जो लीलावती के घर में नौकर का काम करता था। उसी ने बड़ी श्रद्धा के साथ मुख्य-मुख्य देवताओं की सुवर्णमयी प्रतिमायें बनायी थीं, जो देखने में अत्यन्त सुन्दर तथा शोभासम्पन्न थीं। धर्म का काम समझकर उसने उन प्रतिमाओं के बनाने की मजदूरी नहीं ली थी। उस नमक के पर्वत पर जो सोने के वृक्ष लगाये गये थे, उन्हें उस सुनार की स्त्री ने तपाकर देदीप्यमान बना दिया था। (सुनार की पत्नी भी लीलावती के घर परिचारिका का काम करती थी।) उन्हीं दोनों ने ब्राह्मणों की सेवा से लेकर सारा कार्य सम्पन्न किया था।

तदनन्तर दीर्घ काल के पश्चात् लीलावती वेश्या सब पापों से मुक्त होकर शिवजी के धाम को चली गयी तथा वह सुनार, जो दरिद्र होने पर भी अत्यन्त सात्त्विक था और जिसने वेश्या से मजदूरी नहीं ली थी, हे राजन् ! वह आप ही हैं। उसी पुण्य के प्रभाव से आप सातों द्वीपों के स्वामी तथा हजारों सूर्यों के समान तेजस्वी हुए हैं।

सुनार की ही भाँति उसकी पत्नी ने भी सोने के वृक्षों और देवमूर्तियों को कान्तिमान् बनाया था, इसलिये वही आपकी महारानी भानुमती हुई है। प्रतिमाओं को जगमग बनाने के कारण महारानी का रूप अत्यन्त सुन्दर हुआ है; और उसी पुण्य के प्रभाव से आप मनुष्यलोक में अपराजित हुए हैं तथा आपको आरोग्य और सौभाग्य से युक्त राजलक्ष्मी प्राप्त हुई है।

9. यवन-आक्रान्ताओं ने सबसे ज्यादा मन्दिरों को ही क्यों तोड़ा ?

यवन आक्रान्ता भारत में सनातन हिन्दू धर्म का समूल नाश करके इस्लाम की स्थापना करना चाहते थे; किन्तु जब तक भारत में हिन्दू मठ-मन्दिरों का अस्तित्त्व रहता, तब तक ऐसा कर पाना उनके लिए सम्भव नहीं था क्योंकि उस काल में 'मठ-मन्दिर और वैदिक शिक्षा प्रणाली' यही सनातन संस्कृति के संरक्षण के मुख्य केन्द्रबिंदु थे। अतः हिन्दू संस्कृति के विनाश के लिए 'मन्दिरों को नष्ट करना' उनकी प्राथमिकता थी; इसीलिये मध्यकाल में मुस्लिम आक्रान्ताओं ने बड़े पैमाने पर हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त किया।

ब्रजभूमि में ही यवन-शासनकाल में न जाने कितनी बार यहाँ के भव्य मन्दिर-भवनों को नष्ट किया गया। उदहारण के लिए 'श्रीकृष्ण-जन्मभूमि मन्दिर' ही हम देखें तो विधर्मी आक्रान्ताओं द्वारा जब यह मन्दिर विध्वस्त हुआ तो महाक्षत्रप सौदास के राज्य काल में वसु नामक व्यक्ति ने 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान' पर एक मन्दिर का निर्माण कराया। इसके पश्चात् दूसरे भव्य मन्दिर का निर्माण भक्त राजा चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्यजी ने 465 ई. में कराया। बर्बर हूणों ने पुनः इसे ध्वस्त किया, तब 530 ई. में यशोधर्मन तथा वालादित्य आदि द्वारा इसका निर्माण हुआ। सन् 1067 ई. में गजनी के महमूद ने मन्दिर को लूटा,

नष्ट किया, तब लगभग सन् 1150 ई. में राजा विजयपाल के शासनकाल में जज्ज नामक व्यक्ति ने इसका पुनर्निर्माण कराया, दुर्भाग्यवश चतुर्थ बार सिकन्दर लोदी द्वारा पुनः मन्दिर धराशायी हुआ। लगभग 125 वर्ष पश्चात् जहाँगीर के समय में ओरछा नरेश वीरसिंह जूदेव ने पुनः केशवदेवजी के मन्दिर का निर्माण कराया, फिर इस गगनचुम्बी मन्दिर का नाश औरंगजेब ने सन् 1669 ई. में किया वहाँ एक मस्जिद का निर्माण कराया। पुनः मालवीय जी की प्रेरणा पाकर सेठ श्रीयुगलकिशोरजी ने इसे खरीदा और 11 फरवरी 1951 ई. में पुनः "श्रीकृष्ण जन्म सेवा संघ" ट्रस्ट का निर्माण एवं मन्दिर निर्माण हुआ। यह तो रहा मथुरा के केवल एक मन्दिर का इतिहास।

इसी प्रकार श्रीगोविन्ददेव जी, श्रीगोपीनाथ जी, श्रीमदनमोहन जी, श्रीनाथ जी, श्रीमथुरेश जी आदि अनेक अर्चाविग्रहों को मुगल काल में सुरक्षा की दृष्टि से आतंकित ब्रज से ले जाकर जयपुर, करौली, नाथद्वारा आदि राजस्थान की रियासतों में पधराया गया।

जिस समय बरसाना आतंकग्रस्त हुआ, श्रीलाड़लीजी को भी बड़ोदा राजदरबार के परम भागवत राजा श्रीकिशोरी दासजी के अत्यधिक आग्रह पर, गोस्वामी गणों की अनुमति से श्योपुर ले जाया गया। उस समय "श्री नवल चन्द्र गोस्वामी" श्री दादी-बाबा मन्दिर वाले गुसाईं जी श्रीजी की सेवा के लिए श्योपुर गए। (श्योपुर नरेश श्रीकिशोरी दास जी इन्हीं के शिष्य थे।) दो वर्ष श्योपुर राज दरबार में लाड़िली जी विराजीं। उस समय श्रीजी के सिंहासन पर भूगर्भ से प्रकटित श्रीविशाखा जी के श्रीविग्रह को विराजमान किया गया। अतः श्रीलाड़िली जी के स्थान पर विराजित श्रीविशाखा जी का नाम ही विजय लाड़िली हुआ। यवनों का उत्पात शान्त होने पर श्रीजी के श्योपुर से पुनः बरसाना आगमन पर श्रीविजयलाड़िली जी अपने पूर्व स्थान पर ही विराजमान कर दी गईं एवं श्रीजी अपने महल में निज सिंहासन पर विराजीं।

जिस समय मूर्ति-भंजक क्रूर कर्मा औरंगजेब मथुरा के 'केशव देव मन्दिर' एवं महावन के अनेक प्राचीनतम देव-स्थलों को नष्ट करता हुआ आगे बढ़ा तो उसने बलदेव जी की ख्याति सुनी और विनाश के निश्चय से आगे बढ़ा

किन्तु बलराम जी ने चमत्कार दिखाया। सेना निरन्तर बढ़ रही थी बलदेव ग्राम की ओर किन्तु जितना भी चलते "बलदेव ग्राम" दो कोस दूर रह जाता। अंततः औरंगजेब समझ गया कि निश्चय ही कोई चमत्कारी देव विग्रह हैं। इसके बाद भी जब वह बलदेव ग्राम की ओर बढ़ा तो झुण्ड के झुण्ड बर्र-ततैया टूट पड़े। सैकड़ों सैनिक, घोड़े तो उसी समय समाप्त हो गए। मरण स्थिति आ गई। अनुक्षण औरंगजेब ने उस दिव्य स्थान का प्रभाव देख कर शाही फरमान जारी किया। मन्दिर को पाँच गाँव की माफी एवं एक विशाल नक्कारखाने का निर्माण करके भेंट किया।

न केवल ब्रज प्रत्युत सम्पूर्ण भारत का वैभव नृशंस, निरंकुश औरंगजेब की आँखों में खटक रहा था।

इतिहासकारों का कथन है कि औरंगजेब की सेना ने लगभग 1000 मन्दिरों को ध्वस्त किया। 1686 में औरंगजेब ने हिन्दू विरोधी नासर खान को कटक का सूबेदार नियुक्त किया। जिसने अनेक मन्दिरोंका विनाश करके वहाँ मस्जिदें खड़ी कर दी। अंत में, नासर खान ने सैनिकों को लिया और जगन्नाथ पुरी की और चल दिया, वहाँ के मन्दिर का विनाश करने और उसके स्थान पर एक विशाल मस्जिद का निर्माण करने की इच्छा के साथ। किन्तु मार्ग में ऊपर आकाश से बिजली गिरी और सेना के बहुत से हाथी और घोड़े मारे गए। उस तूफान को भगवान् जगन्नाथ जी का कार्य समझकर वह भयभीत हुआ और उसने उड़ीसा के राजा से शान्ति के लिए एक संधि की और पुरी को छोड़ दिया। इस प्रकार उस अवधि में जगन्नाथ जी का मन्दिर सुरक्षित बना रहा। किन्तु आगे चलकर सन 1691 में औरंगजेब ने पुनः जगन्नाथ मन्दिर पर हमला किया तथा रथयात्रा उत्सव पर रोक लगाने की आज्ञा दी। जगन्नाथ जी के मन्दिर के पूर्वी सिंह द्वार तथा दक्षिणी अश्व द्वार को तोड़ दिया और उनकी नाकेबंदी कर दी। भोग मण्डप मन्दिर के शिखर से चक्र को हटा उसे ले गया। केवल क्रूर औरंगजेब के द्वारा ही मथुरा, वाराणसी (काशी) और मुल्तान में लगभग 60 हजार मन्दिर नष्ट किये गए। इस तरह और न जाने कितने मन्दिरों का विध्वंस यवनों द्वारा किया गया किन्तु फिर भी हमारी संस्कृति का वे पूर्णरूपेण नाश नहीं कर पाये।

श्रीरामजन्मभूमि मन्दिर, अयोध्या – सन् 1528 में बाबर के सेनापति मीर बाकी ने अयोध्या के राम मन्दिर को तुड़वाकर बाबरी मस्जिद बनवाई।

मार्तण्ड सूर्य मन्दिर, कश्मीर – कश्मीर घाटी में लगभग 8वीं शताब्दी में बने विशालकाय मार्तण्ड सूर्य मन्दिर को मुस्लिम शासक सिकंदर बुतशिकन के शासन के दौरान पन्द्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में नष्ट कर दिया गया।

मोढेरा सूर्य मन्दिर, गुजरात – यह मन्दिर गुजरात में पुष्पावती नदी के तट पर स्थित है, इसका निर्माण सूर्यवंशी सोलंकी राजा भीमदेव प्रथम ने 1026 ई. में करवाया था। मुस्लिम आक्रांताओं ने इसे भी काफी नुकसान पहुँचाया। यहाँ पर उन्होंने लूटपाट की व मन्दिर की अनेक मूर्तियों को खंडित कर दिया।

काशी विश्वनाथ मन्दिर – इस मन्दिर को 1194 में मुहम्मद गौरी ने लूटने के बाद तुड़वा दिया था। इसे फिर से बनाया गया, लेकिन सन् 1447 में जौनपुर के सुल्तान महमूद शाह द्वारा तोड़ दिया गया। पुनः औरंगजेब के आदेश पर यहाँ का मन्दिर तोड़कर एक ज्ञानवापी मस्जिद बनाई गई।

सोमनाथ मन्दिर, गुजरात – पहली बार इस मन्दिर को 725 ईस्वी में सिन्ध के मुस्लिम सूबेदार अल जुनैद ने तुड़वा दिया था। फिर प्रतिहार राजा नागभट्ट ने 815 ईस्वी में इसका पुनर्निर्माण करवाया। इसके बाद महमूद गजनवी ने सन् 1024 में कुछ 5,000 साथियों के साथ सोमनाथ मन्दिर पर हमला किया, उसकी संपत्ति लूटी और उसे नष्ट कर दिया। गुजरात के राजा भीमदेव और मालवा के राजा भोज ने इसका पुनर्निर्माण कराया। सन् 1297 में जब दिल्ली सल्तनत के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति नुसरत खां ने गुजरात पर हमला किया तो उसने सोमनाथ मन्दिर को दुबारा तोड़ दिया और सारी धन-संपदा लूटकर ले गया। मन्दिर को फिर से हिन्दू राजाओं ने बनवाया। लेकिन सन् 1395 में गुजरात के सुल्तान मुजफ्फरशाह ने मन्दिर को फिर से तुड़वाकर सारा चढ़ावा लूट लिया। इसके बाद 1412 में उसके पुत्र अहमद शाह ने भी यही किया। बाद में मुस्लिम क्रूर बादशाह औरंगजेब के काल में सोमनाथ मन्दिर को दो बार तोड़ा गया। फिर 1783 में इंदौर की रानी अहिल्याबाई द्वारा मूल मन्दिर के समीप एक मंदिर बनवाया गया।

10. जब भगवान् सर्वत्र हैं तो मन्दिर बनाने की क्या आवश्यकता है?

समग्र शास्त्रों में यह बात स्वतःप्रामाणित है कि सर्वत्र भगवान् हैं उनके अलावा कुछ है ही नहीं है–**'मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।'** और शुद्ध भक्ति का वास्तविक स्वरूप भी यही है कि सदा-सर्वदा चराचर जीव-जगत में भगवद्दर्शन करना–**'सीय राममय सब जग जानी।', 'निज प्रभुमय देखहिं जगत'** किन्तु मलिन अन्तःकरण वाले लोगों के लिए किंवा बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुषों को भी सर्वत्र चराचर जगत में भगवद्दर्शन करना बहुत दुर्लभ है साधारणजनों को तो असम्भव ही है । श्रीगीता जी में स्वयं श्रीभगवान् के वचन हैं **'वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।'** सर्वत्र वासुदेवतत्त्व को देखने वाला महात्मा बहुत दुर्लभ है। यद्यपि भक्ति की सही स्थिति यही है कि सर्वत्र जीव-जगत में भगवान् का दर्शन हो किन्तु यहाँ तक पहुँचने के लिए पहले एक जगह भगवद्-बुद्धि करना आवश्यक है; इसीलिये मन्दिरों में विराजमान अर्चाविग्रह की इतनी महिमा है क्योंकि पहले एक विग्रह (मूर्ति) में भगवद्-बुद्धि करके फिर धीरे-धीरे उसी भगवद्भाव को चराचर के प्रति करना है। **अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा। तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्॥** श्रीमद्भागवत 3.29.21-24 में कहा गया है कि अगर कोई केवल मन्दिर में विराजमान अर्चाविग्रह में तो भगवान् का भाव रखता है उनकी बड़े भाव-चाव से पूजा-अर्चना करता है परन्तु वह अन्य जीव जगत का अवज्ञा, अनादर, द्वेष, अपमान करता है तो उसकी पूजा-अर्चना-उपासना राख में हवन करने के जैसे निष्फल हो जाती है और न ही वह भगवान् को प्रसन्न कर पाता है।

दूसरी बात भगवान् के सगुण-साकार सच्चिदानंदमय रूप की उपासना में जो रस-आनंद है उसके आगे ब्रह्मानंद भी फीका है; अतः जो भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम के उपासक रसिक वैष्णव भक्तजन हैं उन्हें भगवान् की विभुता (सर्वदेशीयता) की अपेक्षा एकदेशीयता में ही रसानुभूति होती है। भगवान् अर्चावतार रूप से मन्दिर में विराजमान रहते हैं और भक्तजन उनके दर्शन करके, पूजा करके, उनके समक्ष कीर्तन-नर्तन करके आनन्दित होते हैं।

11. श्रीमानमन्दिर के जीर्णोद्धार का शुभारम्भ

चौरासी लाख योनियों में अनन्त कष्ट सहते हुए, **जनमत-मरत दुसह दुःख होई**–बारम्बार जन्म-मृत्यु का दुःसह कष्ट पाने वाले जीव को–**'बड़े भाग मानुष तन पावा'**– भगवान् की अहैतुकी कृपा से देवदुर्लभ मानव-देह की प्राप्ति होती है और इसका एकमात्र उद्देश्य है –'भगवान् के चरणकमलों की नित्य-निरन्तर उपासना, सतत् आराधना अथवा अहर्निश उनका भजन-कीर्तन करना।' मनुष्य का मन भगवान् की स्मृति, उनके चिन्तन एवं उपासना से सतत् युक्त बना रहे, इसके लिए किसी आधार की, किसी आराधना-स्थल की आवश्यकता होती है, जहाँ वह अपने मन को अपने आराध्य से जोड़ सके, अपनी भावनाओं को अपने प्रभु के प्रति निवेदित कर सके, इष्ट के प्रति अपने सुप्त प्रेम को जागृत कर सके। सनातन धर्म में 'भगवान् के आराधना-स्थल' को 'मन्दिर' कहा जाता है। 'भगवान् श्रीकृष्ण' ने अपने प्रिय सखा व अनन्य ब्रजोपासक 'उद्धवजी' के प्रति श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में उपदेश करते हुए क्रियायोग का वर्णन कर विस्तारपूर्वक अपनी आराधन-विधि बताई है, जिसमें मन्दिर-निर्माण के सम्बन्ध में भी कहा है–**मदर्चां सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद् दृढम्।** (श्रीभागवतजी 11.27.50) उपासकजन मेरी अर्चा के लिए सुन्दर व सुदृढ़ मन्दिर का निर्माण कराकर उसमें मेरी प्रतिमा संस्थापित कराएँ।

मानमन्दिर के नीचे गह्वरवन में श्रीबाबामहाराज की प्राचीन कुटी को तोड़कर वहाँ नृत्य-आराधन के लिए विशाल आराधना-भवन 'रस-कुञ्ज' का निर्माण करवाया गया था; कुछ लोग जो उसके महत्त्व को नहीं समझते थे, वे आलोचना करने लगे। किसी व्यक्ति ने श्रीबाबा से कहा कि महाराज ! बने बनाये स्थान को तोड़ दिया गया और नये संकीर्तन-भवन को बनाने के लिए बहुत अधिक धन का व्यय किया जा रहा है। श्रीबाबा ने उन व्यक्ति से तो कुछ नहीं कहा परन्तु उन्होंने सार्वजनिक सत्संग के समय कहा कि कुछ लोग 'भगवान् की आराधना' का महत्त्व नहीं समझ सकते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में पैसा बहुत बड़ी चीज है, मन्दिर (आराधना-स्थल) नहीं है; ऐसे लोगों के अन्दर विवेक-

शक्ति अथवा श्रद्धा-भक्ति नहीं है। बरसाने में 'श्रीजी का मन्दिर' छः बार बना है। पाँच बार तो वर्तमान-स्थल के बगल से हटकर जो स्थान है, वहाँ बना और जो वर्तमान मन्दिर है, इसको बाबाश्री ने ही बड़ा करवाया, मन्दिर का जो बहुत बड़ा हॉल है, उसे इसलिए बनवाना पड़ा क्योंकि एक बार किसी उत्सव के समय भीड़-भाड़ में भगदड़ के कारण एक बुढ़िया की मृत्यु हो गयी थी। उस समय गोस्वामी-समाज के सामने श्रीबाबा ने ही मन्दिर को बड़ा करने का प्रस्ताव करते हुए सबके सामने कहा कि साधारण से उत्सव में भीड़ के कारण बेचारी वृद्धा की मृत्यु हो गयी तो भविष्य में आगे चलकर राधाष्टमी जैसे बड़े-बड़े पर्वों के समय अपार जनसमूह के मन्दिर में आने पर क्या स्थिति होगी ? उस समय भी कुछ लोग धन के व्यय को लेकर हिचकिचा रहे थे, उन्हें लगता था कि इतना पैसा कहाँ से आयेगा ? (बाबामहाराज ने तो कभी अपने पास एक पैसा भी नहीं रखा) फिर भी किसी ने उस समय 'बाबा' को पाँच रुपये भेंट किए तो उन्होंने वही तुच्छ द्रव्य गोस्वामी समाज के सामने रखते हुए कहा कि श्रीजी के मन्दिर को बड़ा करने के इस परम पुनीत कार्य के लिए सर्वप्रथम मेरी ओर से इस नगण्य योगदान को स्वीकार करें एवं श्रीजी की कृपा का आश्रय लेकर इस कार्य का आज से ही श्रीगणेश किया जाता है। श्रीजी की कृपा से मन्दिर को बड़ा किया गया, जिसमें करोड़ों रुपये का व्यय हुआ।

'मन्दिर' अर्थात् 'आराधना-स्थल'; जब जतीपुरा में महापुरुषों की प्रेरणा से गिरिराज 'गोवर्धन' के ऊपर श्रीनाथजी के मन्दिर का निर्माण आरम्भ हुआ तो इसके लिए शिलाओं पर हथौड़े एवं अन्य यंत्रों के प्रयोग की आवश्यकता थी। गिरिराजजी, उनकी शिलायें साक्षात् भगवान् हैं, उन पर मन्दिर-निर्माण के लिए यन्त्रों के आघात को लेकर वैष्णव-समाज अत्यधिक चिन्तित हो उठा। तब स्वयं श्रीभगवान् ने स्वप्न में प्रकट होकर वैष्णवों से कहा कि तुम लोग यह कार्य मेरे लिए कर रहे हो, इसलिए चिन्ता मत करो, मैं प्रसन्न हूँ, अतः मेरी प्रसन्नता हेतु निर्भय होकर कार्य करो। फिर क्या था, श्रीगोवर्धननाथ की आज्ञा से मन्दिर-निर्माण के लिए गिरिराजजी की शिलाओं पर हथौड़ों व अन्य यंत्रों से आघात किया गया, उन्हें खोदा गया। यह आशंका सर्वथा निर्मूल हो गयी कि ऐसा

करने से गिरिराजजी को कष्ट होगा; तदनन्तर, गोवर्धन पर्वत के ऊपर दिव्य श्रीनाथजी के मन्दिर का निर्माण हुआ। मन्दिर-निर्माण से श्रीभगवान् अति प्रसन्न होते हैं। श्रीमद्भागवत में भगवान् ने उद्धवजी से कहा है –

प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम्।
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात्॥

(श्रीभागवतजी 11.27.52)

मेरी मूर्ति की स्थापना करने से सार्वभौम की व मन्दिर का निर्माण करने से त्रिलोकी एवं पूजा-आराधना करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है तथा तीनों के द्वारा मेरी समानता मिलती है।

इस तरह आवश्यकताओं के दृष्टिगत छठवीं बार बरसाने में 'श्रीजी के मन्दिर' का निर्माण किया गया। विवेकहीन (नासमझ) लोग ऐसे कार्यों की व्यर्थ ही निन्दा करते हैं, इनको इस बात का पता नहीं है कि कुम्भ मेले के अवसर पर एक करोड़ रुपये तक के तो एक-एक फाटक बनाये जाते हैं और वे भी केवल तीस दिनों के लिए। अरब देशों की मस्जिदों में सोने के पानी की परत लगायी गयी है अर्थात् स्वर्ण निर्मित मस्जिदें वहाँ विद्यमान हैं। दक्षिण भारत के तमिलनाडु प्रान्त में भारत के सबसे बड़े श्रीरंगनाथजी के मन्दिर में स्वर्ण निर्मित विशाल गरुड़ स्तम्भ है। वृन्दावन के श्रीरंगजी के मन्दिर में भी स्वर्ण स्तम्भ पर सोने का पत्थर लगा है। इन सब चीजों के महत्त्व को केवल एक भावुक व्यक्ति ही समझ सकता है और भावहीन व्यक्ति तो व्यर्थ की आलोचना किया करते हैं। भगवान् की आराधना एवं आत्मकल्याण हेतु मन्दिर अर्थात् आराधना स्थल का आश्रय जनसाधारण और उनमें भी अत्यधिक पतित-पामर जीवों से लेकर विशुद्ध सन्तों-भक्तों को भी लेना पड़ता है। श्रीमद्भागवत के अनुसार महाभागवत अम्बरीषजी सप्तद्वीपवती पृथ्वी के एकछत्र सम्राट होने पर भी राज्य-कार्य से सर्वथा उदासीन रहकर मनसा-वाचा-कर्मणा पूर्णतया भगवद्भक्ति के प्रति समर्पित थे। उनकी दिनचर्या के बारे में श्रीशुकदेवजी ने कहा है –

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये॥

मन, वाणी और इन्द्रियों को भगवान् में समर्पित करने के साथ इस श्लोक में अम्बरीषजी के बारे में एक महत्वपूर्ण बात कही गयी है–**'करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु'** सम्पूर्ण पृथ्वी के एकछत्र सम्राट होने पर भी वे स्वयं अपने ही हाथों से भगवान् के मन्दिर में मार्जन-कार्य, जैसे - बुहारी लगाते, भगवान् की सेवा के पात्रों को स्वच्छ करते एवं अन्य सेवाकार्यों को किया करते थे। अम्बरीषजी के चरित्र का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने पर पता चलता है कि उन्होंने भगवान् की आराधना हेतु मन्दिर का निर्माण करवाया और अहर्निश मन्दिर में भगवान् की सेवा में ही उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया था। सतयुग, त्रेता, द्वापर आदि धर्मप्रधान युगों से ही भारतवर्ष में भगवान् की उपासना हेतु मन्दिर के महत्त्व को देखते हुए शास्त्रों में उनकी महिमा का वर्णन किया गया एवं ऋषि-मुनियों, राजर्षियों – भक्त राजाओं तथा जनसाधारण ने मन्दिरों में अनन्य भाव से भगवान् की आराधना की। अधर्म-प्रधान कलिकाल का आगमन होने पर भी सम्पूर्ण भारतवर्ष में बड़े-बड़े मंदिरों का निर्माण हुआ और इस भीषणकाल में भगवद्धाम से अवतरित आचार्यों, सन्त-महापुरुषों-विशुद्ध भक्तों ने भी भक्ति के वर्धन और उसके प्रचार-प्रसार के लिए देश के कोने-कोने में, विशेषकर धार्मिक स्थानों, तीर्थों और धामों यथा अयोध्या-चित्रकूट एवं ब्रजभूमि में विभिन्न मंदिरों की स्थापना तथा वहाँ स्वयं आराधना करके जनसाधारण के वास्तविक कल्याण के मार्ग को प्रशस्त किया। आदि शंकराचार्यजी के अद्वैत मत का दृढ़तापूर्वक खण्डन करके सम्पूर्ण भारतवर्ष में श्रीसम्प्रदाय के माध्यम से सगुण-साकार भगवान् की भक्ति का व्यापक प्रचार-प्रसार करने वाले शेषावतार श्रीरामानुजाचार्यजी ने मन्दिरों में अर्चा-विग्रह की शास्त्रीय विधि-विधान एवं आचरण की शुद्धता के साथ 'उपासना' करने पर विशेष जोर दिया, तमिलनाडु में स्थित भारत के सबसे बड़े श्रीरंगनाथजी के मन्दिर की सेवा-पूजा का सम्पूर्ण प्रबन्ध उन्हीं के अधिकार में था।

'श्रीरंगनाथ भगवान् का मन्दिर' कैसे बना, इसके पीछे भी मामा-भानजे के रूप में दो अनन्य प्रेमी भक्तों की गाथा का वर्णन गोस्वामी नाभाजी ने श्रीभक्तमालजी 'छप्पय – 51' में किया है।

मन्दिर-निर्माण के लिए 'मामा-भानजे' की अनुपम सेवा की गाथा भक्तमाल में सदा के लिए अमर हो गयी है और मन्दिर-निर्माण को लेकर उनकी प्रबल भावना और आत्मसमर्पण से सभी को शिक्षा लेना चाहिए। आगे जब उनके द्वारा निर्मित मन्दिर की सम्पूर्ण सेवा का उत्तरदायित्व श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज ने ले लिया तो हमें यह भी समझना चाहिए कि मन्दिर का निर्माण केवल भौतिक सामग्रियों-पदार्थों से ही नहीं होता है। चूँकि 'मन्दिर' का अर्थ है–'आराधना-स्थल' तो मन्दिर में अपने इष्ट की प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा के उपरान्त उनकी उपासना-आराधना (सत्संग-संकीर्तन इत्यादि) की सुव्यवस्था की जाए, जिससे कि उपासकों, दर्शनार्थियों को प्रभु की वास्तविक कृपा की प्राप्ति हो, यथार्थ रूप में जनकल्याण हो; इसकी तरफ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। आराधना (कथा-कीर्तन) के बिना 'मन्दिर' श्मशान-स्थल (भूत-प्रेत रहने की जगह) की तरह है। सनातन धर्म के प्रबल बाधक युग (कलिकाल) में भी भारतवर्ष में रङ्गनाथजी के मन्दिर-निर्माण के उपरान्त अगणित मंदिरों का निर्माण हुआ। सबसे भयंकर स्थिति तब आई जब इस्लामिक आक्रान्ताओं ने भारत की राजनीतिक सत्ता को अपने नियन्त्रण में लेकर सनातन धर्म के समूल विनाश का अभियान आरम्भ कर दिया। अपने लगभग हजार वर्षों के शासनकाल में बर्बर यवन-शासकों ने अत्यधिक क्रूरतापूर्वक हमारे धर्म, हमारे देशवासियों का कठोरता से दमन किया। उन्होंने सनातन धर्म से जुड़ी सभी चीजों का विनाश किया, चाहे वे हमारे मन्दिर हों, धार्मिक ग्रन्थ हों, गौमाता हो अथवा धर्मपरायण नागरिक एवं पतिव्रता स्त्रियाँ हों। दुनिया में सनातन धर्म की जनक और इसकी पोषक 'भारतभूमि' में इस्लाम के प्रचारक और संस्थापक नरपिशाचों ने सर्वप्रथम तो हजारों मंदिरों के विनाश के द्वारा ही अपने दुर्दान्त आन्दोलन का सूत्रपात किया। अयोध्या में रामजन्मभूमि पर बने भगवान् राम के मन्दिर का विध्वंस किया गया, काशी में विश्वनाथ मन्दिर का नाश किया तथा मथुरा में कृष्ण जन्मभूमि पर तो अनेकों बार बहुमूल्य धातुओं व रत्नों से जटित मन्दिर का नाश हुआ; किन्तु भगवान् की महती कृपा से वर्तमानकाल में देश की सत्ता में परिवर्तन हुआ। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात्

दीर्घकाल तक भारत और भारतीयता का विनाश करने वाली लुटेरों की राजनीतिक पार्टी चुनाव में बुरी तरह पराजित हुई और अब तक पराजय के पथ पर अग्रसर है। देश में अच्छे नेताओं का शासन स्थापित हुआ और इसीलिए अब अयोध्या में 'राममन्दिर' का निर्माण होने जा रहा है, काशी में भी 'विश्वनाथ मन्दिर के विशाल भव्य परिसर' का निर्माण किया गया है तथा मथुरा की 'श्रीकृष्ण-जन्मभूमि' का मामला भी कोर्ट में चल रहा है।

हमें ये भी ध्यान देना चाहिए कि कलिकाल में हजारों मंदिरों का निर्माण किये जाने पर भी इस देश के हजारों मन्दिरों का विधर्मियों द्वारा जो विध्वंस किया गया, उसमें उनकी नीचता के साथ कहीं हम लोगों की भी तो कोई गम्भीर गलती नहीं थी, जिसके कारण इतनी विशाल संख्या में हमारे मंदिरों का नाश मुट्ठी भर विदेशी हमलावर कर गये। स्थिति का गंभीरतापूर्वक आकलन करने पर ज्ञात होता है कि सनातनी हिन्दू-समाज की भी गम्भीर त्रुटियाँ थीं। एक तो यह कि जितने भी हमारे देश के मन्दिर तोड़े गये, उनमें राजस-तामस भाव से अर्जित सोने-चाँदी ही नहीं अपितु बहुमूल्य रत्नों, हीरे-मोती और मणियों की भरमार थी। यही कारण था कि मंदिरों को तोड़कर उनसे प्राप्त हुई बहुमूल्य सम्पदा सोना, चाँदी, हीरे-मोती और मणियों को ऊँटों व खच्चरों पर लादकर अरब देशों में पहुँचाया गया। इसके अतिरिक्त हिन्दू-समाज में एकता नहीं थी। मुस्लिम शासकों के विरुद्ध जिन हिन्दू राजाओं ने युद्ध किया तो उनमें पारस्परिक फूट बहुत थी। उस समय देश में मराठा, राजपूत एवं जाट राजाओं ने मुस्लिम राजाओं के साथ डटकर मुकाबला किया परन्तु उनमें परस्पर एकता का अभाव था, आपसी द्वेष के कारण सम्पूर्ण देश के राजा एकता के सूत्र में बँधकर, संगठित नहीं हो सके और विदेशी यवन-शासकों ने इसका लाभ उठाया तथा हमारे देश से 'सनातन धर्म' को उखाड़ फेंकने के प्रयास में मंदिरों और उनमें स्थापित भगवद्- प्रतिमाओं को नष्ट करने का सब प्रकार से प्रयत्न किया। हमारे भागवतधर्म का ह्रास अवश्य हुआ लेकिन विनष्ट किसी भी काल में नहीं हुआ क्योंकि इसके संरक्षण-संवर्द्धन के लिए स्वयं श्रीभगवान् अनेकों रूपों में अवतरित होते रहते हैं। भारतभूमि सदा से ऋषि-मुनि-संत-भक्तजनों की भजनाराधन

स्थली रही है, इसलिए यहाँ की सनातन परम्परा का समूलतः कभी भी विनाश नहीं हो सकता है।

वर्तमान में परमपूज्य श्रीबाबामहाराज ने भी दिव्य-भव्य 'श्रीमानमन्दिर' के सुनिर्माण का संकल्प लिया है, जो सम्पूर्ण संसार के लिए परम कल्याणकारी सिद्ध होगा क्योंकि मानमन्दिर में बाबाश्री के सत्संग से केवल ब्रज में ही नहीं, अखिल विश्व के जीव-जगत को विशुद्ध भक्ति की प्रेरणा प्राप्त हो रही है, जिससे जन-जन को निष्कामभाव से श्रीब्रजसेवाराधना करने का सम्यक् सुलाभ सहज हो रहा है।

.....

मन्दिर शिखर मानगढ़ ऊपर राधा मानविहारी लाल॥

पर्वत ब्रह्माचल बरसाने,
राधा माधव रस सरसाने,
बिहरैं प्रेम भरे मन माने,
गहवरवन के पश्चिम न्यारी चोटी चमकै भाल।
बैठी सुन्दर कीरति बाला,
नटखट चंचल नंद के लाला,
कछु लँगराई करी गोपाला,
गोरी भरी गुमान रूप की मान कियो तत्काल।
बिनती बचन सुनै नहिं प्यारी,
दर्पन दिखरावैं गिरिधारी,
नहिं देखैं अधरन फरकारी,
प्रियाचरण निज मोरमुकुट ते सहरावैं गोपाल।
सखी सहचरी मेल करावैं,
हरि नैंनन आँसू ढरकावैं,
कबहुँ गावैं नृत्य दिखावैं,
नाना भाँति रिझावैं तब कहुँ रीझै गोरी बाल॥

मन्दिर मान मानगढ़ ऊपर गहवरवन बरसाने में॥

इकली ऊँची शिखर निराली,
चारों ओर झुकी हरियाली,
बिहरैं नित्य प्रिया वनमाली,
प्रीति रँगीली खेल रँगीले नित गहवर वन में।
सकल कला की मूल स्वामिनी,
गायी एक दिन नई रागिनी,
करैं अचम्भौ सकल कामिनी,
सीखन लगे श्याम प्यारी सों अति उत्कंठा में।
स्वर विस्तार प्रिया समझावैं,
राग वक्र गति गाय बतावैं,
मोहित पिय पूछत ही जावैं,
प्यारी कोयल के कोमल सुर सुनवे लालच में।
रूठी भामिनी भानुदुलारी,
बोले ते नहिं बोलीं प्यारी,
देखे नहिं देखे सुकुमारी,
कोमल चरन छुवन नहिं देवैं सदृढ़ मान मन में।
बोले पिय सुन बिनती प्यारी,
तुम उदार गुरु बनी हमारी,
सीखी रागिनी कृपा तिहारी,
तुम्हरे मीठे स्वर सुनवे को फिर फिर पूछ्यौ छल में।
वही राग हरि गाय सुनायौ,
सुन वह राग मान बिसरायौ,
रीझीं प्यारी कंठ लगायौ,
प्रणय मान जाने ना नीरस कलह मान सब जग में॥

.....